યુક્રાંદ

प्यास और परमात्मा

(आचार्य श्री की अंतर्प्रेरणा)

●

प्यास के अतिरिक्त परमात्मा के निकट पहुंचने का और कोई उपाय भी तो नहीं है।

प्यास बढ़ेगी—बेचैनी बढ़ेगी—विरह बढ़ेगा।

और साथ ही प्रेम बढ़ेगा—प्रार्थना बढ़ेगी।

आग ही आग रह जायेगी—प्यास की आग, प्रेम की आग, प्रार्थना की आग।

और जिस दिन अहं जलकर राख की ढेरी बन जायगा,

बस उसी दिन वह प्रभु द्वार पर आ जाता है।

वह तो द्वार पर ही है।

लेकिन, हमारा अहंकार ही उसे ढाँके है और वह दिखाई नहीं पड़ रहा है।

गलें और मिटें।

राख हो जाना है।

और फिर देखेंगे कि स्वयं को बचाने में ही सब कुछ खोया हुआ था।

●

(मुखपृष्ठ रेखाकृति : श्री वृन्दावन सोलंकी, जूनागढ़)

परमात्मा का घर

(एक बोध कथा)

मैं प्रत्येक से पूछता हूं कि जीवन में तुम क्या सोच रहे हो ? जीवन की खोज में ही जीवन का अर्थ और मूल्य छिपा है।

कोई यदि कंकड़ पत्थर ही खोजता हो तो उसके जीवन का मूल्य उसकी खोज से ज्यादा कैसे होगा ?

किन्तु अधिक व्यक्ति क्षुद्र की खोज में ही क्षुद्र हो जाते हैं और अंततः पाते हैं कि जीवन की संपदा उनने ऐसी संपदा को खोजने में गंवाई है, जो कि संपदा ही नहीं थी।

यह उचित है कि किसी भी यात्रा के पहले हम ठीक से जान लें कि हम कहां पहुंच रहे हैं और क्यों पहुंचना चाहते हैं और यह भी कि क्या गन्तव्य यात्रा की कठिनाइयों और श्रम को झेलने योग्य भी है ?

जो विचार कर नहीं चलता, वह अक्सर पाता है कि या तो वह कहीं पहुंचता ही नहीं, या फिर कहीं पहुंच भी जाता है तो जहां पहुंच जाता है, उस स्थान को पहुंचने योग्य ही नहीं पाता।

मैं चाहता हूं कि ऐसी भूल तुम्हारे जीवन में न हो। क्योंकि ऐसी भूल सारे जीवन को ही नष्ट कर देती है।

जीवन है छोटा। शक्ति है सीमित। समय है अल्प। इसीलिए, जो विचार से और सावधानी से और सजगता से चलते हैं, वे ही कहीं पहुंच पाते हैं।

एक फकीर हुआ। नाम था उसका शिब्ली, किसी यात्रा पर था। मार्ग में एक युवक को कहीं तेजी से जाते हुए देखा तो उसने पूछा : "मित्र कहां भागे जा रहे हो ?" उस युवक ने बिना ठहरे ही कहा : "अपने घर" शिब्ली ने इस पर एक बड़ा अजीब सा सवाल किया। पूछा : "कौन सा घर ?"

मैं भी तुमसे यही पूछता हूं। तुम भागे जा रहे हो। सभी भागे जा रहे हैं। मैं पूछता हूं : "कहां भागे जा रहे हो।"

यह सारी दौड़ कहीं अंधी तो नहीं है ?

कहीं ऐसा तो नहीं है कि सब भाग रहे हैं, इसीलिए तुम भी भाग रहे हो ? बिना यह जाने की कहां जाना है ?

काश, इसके उत्तर में तुम भी वही कह सको, जो उस युवक ने शिब्ली को कहा था, तो मेरे प्राण आनन्द से नाच उठेंगे।

उस युवक ने कहा था : "एक ही तो घर है। परमात्मा का घर। उसकी ही खोज में हूं।"

निश्चय ही शेष सब स्वप्न है..... शेष किसी भी घर की खोज स्वप्न है। घर तो एक ही है.....वास्तविक घर तो एक ही है : परमात्मा का घर। और जो उसे खोजना चाहता है, उसे स्वयं को ही खोजना पड़ता है, क्योंकि स्वयं में ही वह छिपा हुआ है।

क्या परमात्मा के अतिरिक्त कोई और घर भी है ?

और क्या स्वयं के अतिरिक्त परमात्मा को कहीं और भी पाया जा सकता है ?

मैं शिब्ली की जगह होता तो उस भागते युवक से एक सवाल और पूछता। पता नहीं वह क्या उत्तर देता, लेकिन सवाल तो मैं बता ही दूं।

मैं उससे कहता : "मित्र परमात्मा को पाना है तो भाग क्यों रहे हो ? कहां भागे जा रहे हो ? जो यहीं है, उसे भाग कर कैसे पाओगे ? जो इसी क्षण में है. अभी है, उसे कभी....भविष्य में पाने की कामना क्या भ्रांति नहीं ? और जो भीतर है, उसे भागकर खोया ही जा सकता है। उसे पाने के लिए क्या उचित नहीं है कि ठहरो और रुको और स्वयं में देखो ?"

●●●

आचार्य रजनीश : मेरी दृष्टि मे

हे प्यारे।
अगर ईश्वर की कोई इच्छा होती है तो मनुष्य रूप में जन्म ले लेता है।
वह तो तू ही है।
अगर सत्य जन्म ले ले तो ?
प्रेम में रूपान्तरित हो जाता है।
तो प्रेम फिर रजनीश हो कर आया है।
प्रेम,
रजनीश,
सत्य।
मुझे तो ये सब एक ही लगता है।

डॉ० एच० पी० शुक्ल
जूनागढ़

मृत्यु पर विजय

(पिछले दो अंकों में आपने आचार्य श्री के द्वारका साधना शिविर में 'मृत्यु पर विजय' के दो प्रवचनों के अंतर्गत जीवन के अंतरतम रहस्यों का बोध पाया और उसी क्रम में प्रस्तुत है यह तीसरा प्रवचन)

संकलन–श्री पुष्कर भाई गोकाणी, द्वारका

एक मित्र ने पूछा है कि मैंने सत्य को या परमात्मा को पाने की जो विधि बतायी है उस सबका निषेध कर स्वयं को जानने का, क्या इससे उल्टा नहीं हो सकता है कि हम सबमें ही परमात्मा को जानने का प्रयास करें। सर्व में वही है, यह भाव करें ?

इसे थोड़ा समझना उपयोगी होगा। जो व्यक्ति स्वयं में परमात्मा को नहीं जानता है वह सर्व में उसे कभी भी नहीं जान सकता है। जो अभी स्वयं में भी नहीं पहचान पाया वह और किसी में उसे नहीं पहचान पा सकता है। स्वयं का मतलब है जो मेरे निकटतम है, और फिर तो कोई भी होगा मुझसे थोड़ा दूर और दूर होगा और निकटतम मैं हूं उसमें भी मुझे परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता हो तो मुझसे जो दूर हैं उनमें तो कभी भी नहीं दिखायी पड़ सकता है। पहले तो स्वयं में ही जानना होगा। लेकिन ध्यान रहे, यह बहुत मजे की बात है कि जो व्यक्ति स्वयं के द्वार में प्रवेश करता है वह अचानक सर्व में प्रविष्ट हो जाता है। स्वयं का द्वार सर्व का ही द्वार है। जो अपने भीतर प्रवेश करता है वह भीतर पहुंचते ही पाता है कि वह सबके भीतर पहुंच गया हैं।

हम भिन्न भिन्न नहीं हैं। अगर कोई व्यक्ति वृक्ष के एक एक पत्ते को बाहर में खोजने जाय तो सभी पत्ते अलग अलग हैं और अगर एक पत्ते के भीतर भी प्रविष्ट हो जाय तो उस वृक्ष की मूल धारा में पहुंच जायगा जहां कि सभी पत्ते इकट्ठा हैं। एक एक पत्ते को अलग से देखिये तो एक एक पत्ते अलग अलग हैं लेकिन किसी भी पत्ते को भीतर से जान लें तो वृक्ष की उस मूल धारा में पहुंच जायेंगे जहां से सारे पत्ते निकलते हैं और सब पत्ते विलीन हो जाते हैं। जब हम अपने भीतर नहीं उतरते हैं तभी तक मैं और तू का भेद है और जिस दिन हम मैं के भीतर उतर जायेंगे उस दिन मैं भी मिट जाता है, उस दिन सर्व ही शेष रह जाता है। असल में सर्व का मतलब ऐसा नहीं है कि मैं और तू के जोड़ का नाम सर्व है। सर्व का मतलब जहाँ मैं नहीं रह गया, तू न रह गया। फिर जो शेष रह जाता है उसका नाम सर्व है। और अगर मेरा मैं अभी नहीं मिटा है तो मैं सर्व का जोड़ ही कर सकता हूं लेकिन वह जोड़ सत्य न होगा। सारे पत्ते को भी मैं जोड़ लूं तो भी वृक्ष नहीं बनता है यद्यपि वृक्ष में सारे पत्ते जुड़े हैं। वृक्ष सारे पत्तों के जोड़ से ज्यादा है। असल में जोड़ों से कोई संबंध नहीं है, जोड़ना ही गलत है। जोड़ने को हमने अलग अलग मान लिया है। वृक्ष अलग अलग है ही नहीं। जैसे हम मैं में उतर जायेंगे वैसे ही मैं विलीन हो जाता है। स्वयं से उतरते जो सबसे पहली चीज मिटती है वह स्वयं का होना है और जहां स्वयं नहीं रहा वहां तू भी मिट गया। फिर जो शेष रह जाता है वह सर्व है। उसे सर्व कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि सर्व शब्द पुराने में की ही भाषा है इसलिए जो जानते हैं उसे सर्व भी न कहेंगे, वे कहेंगे, किसका जोड़ ? कौन सब ? तब वे कहेंगे कि एक ही बच जाता है लेकिन शायद वे एक कहने में भी हिचकेंगे क्योंकि एक कहने से दो का ख्याल पैदा हो जाता है। ऐसा लगता है कि अगर एक बच जाता है

तो एक का अर्थ ही नहीं होता दो के बिना। दो हो तो ही एक होता है इसलिए जो और समझ पाते हैं वे यह भी नहीं कहते कि एक ही बच जाता है, वे कहते हैं अद्वैत बच जाता है। बड़े मजे की बात है। वे कहते हैं कि दो नहीं बचते। वे यह नहीं कहते कि एक बच जाता है, वे कहते हैं दो नहीं बचते। वे यह नहीं कहते कि एक बच जाता है, वे कहते हैं दो नहीं बचते इसलिए अद्वैत का मतलब है जहां दो नहीं है। यह उल्टे कहने की क्या जरूरत है, सीधा कहो न कि एक है। लेकिन एक कहने में खतरा है। एक से दो का ख्याल पैदा होता है और जब हम कहते हैं, जहां दो नहीं है वहां तीन भी नहीं, वहां एक भी नहीं है, वहां अनेक भी नहीं है, वहां अनेक भी नहीं हैं, वहां सर्व भी नहीं है। असल में वह जो हमारे देखने की दुनिया थी मैं के रहते, उसकी वजह से विभाजन पैदा हुआ था। अब अविभाज्य जो भी है अविभाजित है। वह शेष रह जाता है लेकिन उसे जानने के लिए अगर कोई ऐसा करे जैसा मेरे मित्र ने पूछा है कि ऐसा अगर करें कि सब में परमात्मा की कल्पना करें, लेकिन वह कल्पना ही होगी। कल्पना सत्य नहीं है।

मेरे पास एक फकीर को लाया गया था, बहुत दिन हुए। जो लोग उसे लाये उन्होंने मुझे कहा कि उन फकीर को सब जगह परमात्मा के दर्शन होते हैं। आज तीस वर्षों से निरंतर उन्हें प्रत्येक चीज में परमात्मा के दर्शन होते हैं। फूल में, पौधे में, पत्थर में, सब में। मैंने उन फकीर से पूछा कि आपको यह दर्शन किसी अभ्यास से तो नहीं हुआ? अगर अभ्यास से हुए हैं तो दर्शन बड़े झूठे हैं। उन्होंने कहा, मैं समझा नहीं। मैंने उनसे कहा, क्या आपने सभी में परमात्मा को देखने की कल्पना और कामना तो नहीं की? तो उन्होंने कहा कि निश्चित तीस वर्ष पहले मैंने वह साधना शुरू की थी कि मैं प्रत्येक चीज में परमात्मा को देखने का प्रयास करता था, फिर मुझे भगवान दिखायी पड़ने लगे। तो मैंने उनसे कहा, तीन दिन मेरे पास रुक जायें और तीन दिन कृपा करें, प्रयास न करें, सबमें भगवान है इसका प्रयास न करें। वह मेरे पास रुक गये। दूसरे दिन सुबह मुझसे कहा कि आपने तो मुझे बड़ा नुकसान पहुंचाया! बारह घंटे ही मैंने प्रयास नहीं किया है तो मुझे पत्थर, पत्थर ही दिखायी पड़ने लगा और पहाड़ पहाड़ दिखायी पड़ने लगा। आपने तो मेरा भगवान छीन लिया। आप कैसे आदमी हैं? आपने तो मुझे बडा नुकसान पहुंचा दिया। मैंने उनसे कहा, जो भगवान बारह घंटे अभ्यास करने से छूट जाता है वह भगवान नहीं था, सिर्फ अभ्यास का प्रतिफलन था। जैसे कोई आदमी किसी चीज को जोर जोर से दोहराता रहे तो एक भ्रम पैदा कर देता है। नहीं, पत्थर में भगवान देखने नहीं है, उस स्थिति में पहुंचना है जहां पत्थर में भगवान के सिवाय कुछ और देखने को शेष ही न रह जाता है। ये दोनों भिन्न बातें हैं। पत्थर में भगवान को देखने की कोशिश से पत्थर में भगवान दिखायी पड़ने लगेंगे लेकिन वे भगवान प्रोजक्शस से ज्यादा नहीं हैं। उन्हें आपकी ही कल्पना से पत्थर पर आरोपित किया गया है। आपने ही थोप दिया है पत्थर के ऊपर भगवान को। वे भगवान बिल्कुल आपके बनाये हुए हैं, वे भगवान बिल्कुल आपकी कल्पना का विस्तार हैं, वे भगवान आपके सपने से ज्यादा नहीं हैं, और आप दोहरा दोहरा के सपने से मुसीबत करते रहेंगे बराबर दिखायी पड़ते रहेंगे— लेकिन यह भ्रमजाल में जीना है, यह किसी सत्य में उतर जाना नहीं है। हां, एक दिन ऐसा जरूरत होता है कि जब स्वयं मिट जाता है व्यक्ति तब सिवाय भगवान के कोई दिखायी नहीं पड़ता, तब ऐसा नहीं होता है कि पत्थर में भगवान है, तब ऐसा होता है कि पत्थर कहां, भगवान ही है। मेरा फर्क समझ रहे हैं आप? तब ऐसा नहीं होता है कि पत्थर में पौधों में भगवान है। पौधा भी है और उसमें भगवान भी है। तब ऐसा होता है कि पौधा कहां गया, पत्थर कहां गया, पहाड़ कहां गया? क्योंकि जो शेष रह गया है वह भगवान ही है और तब आपके अभ्यास पर निर्भर नहीं है वह बात। आपके अनुभव पर निर्भर है। और सबसे बड़ा खतरा जो है साधना की दुनिया में वह कल्पना का खतरा है। वह यह है कि हम उन सत्यों की कल्पना भी कर सकते हैं जिन सत्यों का अनुभव होना चाहिए। अनुभव और कल्पना में भेद है। एक आदमी दिन भर खाना नहीं खाया है। रात सपने में

भोजन कर लेता है। जहाँ तक भोजन सपने में करने का सबंध है, सपनेमें बड़ी तृप्ति मिल जाती है भोजन करने की। शायद जागने में उतना आनन्द नहीं आता है जितना सपने में भोजन करने का क्योंकि जितना चाहिए और जैसा चाहिए वैसा भोजन कर लिया जाता है। लेकिन सुबह उठकर उस भोजन से पेट नहीं भर जाता है, न उस भोजन से खून बनता है और अगर सपने के भोजन पर कोई आदमी जिन्दा रहने लगे तो आज नहीं कल मरेगा, जिन्दा नहीं रह सकता। क्योंकि सपने का भोजन कितना ही तृप्ति देता हो फिर भी भोजन नहीं है और न रक्त बन सकता है, न मांस बन सकती है, न हड्डी, न मज्जा। सपने में सिर्फ धोखा बन सकता। सपने के भोजन ही नहीं होते, सपने के भगवान भी होते हैं और सपने का मोक्ष भी होता है और सपने की शांति भी होती है और सपने के सत्य भी होते हैं। आदमी के मन की सबसे बड़ी क्षमता जो है वह यह है, यह खुद को धोखा दे लेने की क्षमता है लेकिन उस तरह के धोखे में पड़ने से कोई कभी भी आनन्द को, मुक्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता है। इसलिए मैं आपसे यह नहीं कहता हूं कि आप सबमें भगवान देखना शुरू करें। मैं आपसे सिर्फ यह कहता हूं कि आप भीतर देखना शुरू करेंगे कि वहाँ क्या है और जब आप भीतर देखना शुरू करेंगे कि वहां क्या है तो सबसे पहले जो व्यक्ति विदा हो जायगा वह हैं आप। आप सबसे पहले विदा हो जायें, आप नहीं बचेंगे वहां भीतर। पहली दफा आप पायेंगे कि यह मेरे होने का बड़ा भ्रम था कि मैं हूं। यह तो खो गया, यह तो विदा हो गया। भीतर झांकते ही मैं पहले विदा हो जायगा। अहंकार पहले विदा हो जाता है। असल में हमने झांक-कर नहीं देखा है तभी तक मालूम होता है कि मैं हूं और शायद इसीलिए हम भीतर झांककर देखने में डरते भी हैं कि झांककर देखें तो कहीं खो न जायें।

कभी आपने देखा है, कोई आदमी एक मसाल हाथ में ले ले और जोर से घुमाने लगे तो एक फायर सर्किल बन जाता है, एक अग्नि वृत्त बन जाता है। दिखायी पड़ने लगता है कि आग का एक गोल घेरा बन गया है। गोल घेरा कहीं नहीं है, सिर्फ एक मसाल है जो जोर से घूम रही है। अगर आप पास जाकर गौर से देखें तो गोल घेरा मिट जायेगा, रह जायेगी मसाल। लेकिन तेजी से घूमने की वजह से मसाल गोल घेरा मालूम होती है आग का। दूर से देखने पर लगता है कि आग का वृत्त है, गोल घेरा है। है कहीं भी नहीं, लेकिन दिखायी पड़ता है। अगर निकट जाकर पहचानें तो पता चलेगा कि जोर से घूमती हुई मसाल है। अग्नि वृत्त झूठा है। ऐसे ही हम गौर से जाकर देखेंगे तो पता चलेगा कि मैं बिल्कुल ही झूठा हूं। तेजी से घूमती हुई चेतना के कारण मैं का भ्रम पैदा हो जाता है जैसे तेजी से घूमती हुई मसाल के कारण वृत्त का भ्रम पैदा हो जाता है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है जो समझ लेना चाहिए। शायद आपको ख्याल भी न हो कि हमारे जीवन के सारे भ्रम तेजी से घूमने के भ्रम हैं। दीवाल ठोस दिखायी पड़ती है, पत्थर पड़ा है पैर के नीचे, कितना साफ और ठोस है लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि ठोस पदार्थ जैसी कोई चीज है ही नहीं। तब तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे। क्या आपको पता है कि वैज्ञानिक मैटर, पदार्थ के जितना ही पास गया उतना ही पदार्थ विलीन हो गया। जब तक दूर था समझता था कि पदार्थ है और सबसे ज्यादा वैज्ञानिक घोषणा करता था कि पदार्थ ही सत्य है लेकिन अब वैज्ञानिक ही कहता है कि पदार्थ तो है ही नहीं तेजी से घूमते हुए विद्युतकण इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि तेजी से घूमने की वजह से ठोसपन का भ्रम पैदा होता है। ठोसपन कहीं भी नहीं है। जैसे बिजली का पंखा जोर में घूमता है तो उसकी तीन पंखुड़ियां दिखायी नहीं पड़ती हैं, कोई गिनकर बता नहीं सकता है कि पंखुड़ियाँ कितनी हैं। और तेजी से घूमे तो फिर हमें लगेगा कि एक टीन का गोल चक्कर घूम रहा है। फिर पंखुड़ियां दिखायी ही नहीं पड़ेंगी। इतने तेजी से भी घुमाया जा सकता है उसे कि आप उसके ऊप बैठ जायें और आपको ऐसा पता न लगे कि पंखुड़ियां बीच से आ रही हैं जा रही है। आपको ऐसा लगे कि मैं किसी ठोस चीज पर बैठा हुआ हूं। अगर इतनी तेजी से घूमे कि एक पखुड़ी

जाये, उसके पहले दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जाय तो आपको कभी पता नहीं चलेगा कि बीच बीच में खड्डे भी आते हैं। पंखा इतनी तेजी से घूमेगा, आपको पता नहीं चलेगा। पदार्थ उतने ही तेजी से घूम रहे हैं उसके कण, कण, और पदार्थ नहीं है। कण सिर्फ विद्युत ऊर्जा है, इलेक्ट्रिक इनर्जी है, वह तेजी से घूम रही है। घूमने की वजह से ठोसपन का भाव दे रही है। सारा पदार्थ सिर्फ तेजी से घूमते हुए ऊर्जा का फल है। दिखायी पड़ता है। है कहीं भी नहीं। ठीक ऐसे ही चित्त की ऊर्जा इतनी तेजी से घूम रही है कि मैं का भ्रम पैदा होता है। दो भ्रम, हैं जगत में, एक पदार्थ का भ्रम, मैटर भ्रम और दूसरा में का भ्रम, इगो का, अहंकार का भ्रम। ये दोनों भ्रम एकदम झूठे हैं लेकिन इनके पास जाने से पता चलता है कि ये नहीं हैं। विज्ञान पदार्थ के पास जाता है तो पदार्थ विलीन हो गया और धर्म में के पास जाता है तो मैं विदा हो गया है। धर्म की खोज है कि मैं नहीं है विज्ञान की खोज है कि पदार्थ नहीं है। जितने निकट जाता है उतना ही भ्रम टूट जाता है। इसलिए मैं कहता हूं कि भीतर जायें, निकट से भीतर देखें वहाँ कोई मैं है और मैं नहीं कहता कि ऐसा मान लें कि मैं नहीं हूं। अगर मान लिया तो झूठा हो जायगा। मेरी बात अगर मानकर चले गये और आप ऐसा सोचने लगे कि मैं नहीं हूं, अहंकार झूठा है। मैं तो आत्मा हूं, मैं तो ब्रह्म हूं, अहंकार नहीं हूं तो आप गड़बड़ में पड़ जायेंगे क्योंकि आप यह दोहरा रहे हैं तो फिर झूठा ही दोहरायेंगे आप। नहीं मैं कहता हूं कि आप ऐसा दोहरायें, मैं यह कहता हूं कि आप भीतर जायें, देखें, पहचानें। जो पहचानता है, देखता है वह पाता है कि मैं नहीं हूं। फिर कौन है? जब मैं नहीं हूं, कोई तो है, मेरे न होने से कोई भी नहीं है ऐसा नहीं, क्योंकि भ्रम को जानने के लिए भी कोई तो चाहिए। भ्रम भी पैदा हो जाय इसलिए कोई तो चाहिए।

मैं नहीं हूं, फिर कौन है? फिर जो शेष रह जाता है उसका अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है लेकिन उसका अनुभव एकदम विस्तीर्ण हो जाता है। मेरे गिरते ही तू भी गिर जाता है वह भी गिर जाता है, फिर एक सागर ही रह जाता है चेतना का। उस स्थिति में दिखाई पड़ेगा कि परमात्मा हा है। तब तो शायद यह कहना ही गलत मालूम पड़े कि परमात्मा ही परमात्मा है क्योंकि यह कहना भी पुनरुक्त है। जब हम कहते हैं गाड इज तो हम पुनरुक्त कर रहे हैं। पुनरुक्त इसलिए कर रहे हैं कि जो है उसी का दूसरा नाम ईश्वर है। है का ही दूसरा नाम ईश्वर है इसलिए ईश्वर है, ऐसा एक ही चीज को दोहराना है, एक ही बात को दोबारा कहना है। ठीक नहीं है यह बात। ईश्वर है का क्या मतलब? हम है उस चीज को कहते हैं जो नहीं है, वह हो सकती हो। हम कहते हैं टेबल है, क्योंकि कल टेबल नहीं हो सकती है और कल टेबल नहीं थी। जो चीज नहीं थी, फिर नहीं हो सकती है। उसको है कहने का कोई मतलब है? लेकिन ईश्वर न तो ऐसा है कि कभी नहीं था और न ऐसा हो सकता है कि कभी नहीं होगा। उसे है कहने का कोई मतलब नहीं। वह है ही। असल में जो है उसका ही वह दूसरा नाम है। होने का ही दूसरा नाम परमात्मा है। एक्जीस्टेंस, अस्तित्व का ही दूसरा नाम परमात्मा है। लेकिन मेरी दृष्टि में अगर हमने इस जो है, इस पर अपने परमात्मा को थोपा तो हम झूठ में उतर जायेंगे और ध्यान रहे, परमात्मा भी अपने अपने ट्रेड मार्क के अलग अलग हैं। हिन्दू का अपना है थोपने के लिए, मुसलमान का अपना है, ईसाई का अपना है, जैन का अपना है, बौद्ध का अपना है। सबके अपने अपने परमात्मा हैं। परमात्मा का भी बड़ा गृह उद्योग खुला हुआ है। अपने घर में परमात्मा को ढाला जा सकता है। होम इंडस्ट्री है उसकी। अपने अपने घर में ढालो, अपने अपने परमात्मा को निर्माण करो और ये परमात्माओं को ढालने वाले वैसे ही बाजार में लड़ते हैं जैसे सभी अपने अपने घर में सामान ढालने वाले बाजार में, दूकान पर लड़ते हैं। एक दूसरे का परमात्मा भी भिन्न पड़ जाता है। असल में जब तक मैं हूं तब तक जो भी करूंगा वह आपसे भिन्न होगा। जब तक मैं है मेरा धर्म भिन्न होगा, मेरा ईश्वर भिन्न होगा क्योंकि वह मेरे मैं के निर्माण होंगे। मैं भिन्न हूं इसलिए मेरा सब भिन्न

होगा। अगर दुनिया में ठीक ठीक धर्म निर्माण करने की स्वतंत्रता हो तो जितने आदमी हैं उतने ही धर्म होंगे, इससे कम नहीं हो सकते। वह तो ठीक ठीक स्वतंत्रता नहीं। हिन्दू बाप अपने बेटे को इसके पहले कि वह स्वतंत्र हो जाय, हिन्दू बना डालता है। मुसलमान बाप अपने बेटे को उसके पहले कि उसमें बुद्धि आये, मुसलमान बना देता है क्योंकि बुद्धि आने पर न कोई हिन्दू बनेगा, न कोई मुसलमान बनेगा। इसलिए बुद्धि के पहले ही सब नासमझियां अन्दर डाल देने की जरूरत है इसलिए सब बाप उत्सुक हैं कि बेटा जब छोटा हो तभी से धर्म की शिक्षा हो जानी चाहिए उसकी, क्योंकि कल वह जवान हो जायेगा, सोचने लगेगा तो दिक्कत देगा। विचार आ जायेगा तो पच्चीस प्रश्न खड़ा करेगा और पच्चीस प्रश्न के उत्तर नहीं हो पायेंगे। और फिर वह ऐसी बातें करेगा जिनको हल करना मुश्किल होगा इसलिए सब बाप उत्सुक हैं कि उनके बेटे, उनकी बेटियां जन्म लेते ही उनकी घुटी में धर्म पिला दिया जाय, उनके खाने में धर्म डाल दिया जाय। तब होश नहीं रहता, समझ नहीं रहती, कुछ भी नासमझी सिखा दो, वह सीख लेता है। एक आदमी मुसलमान हो जाता है एक हिन्दू, एक जैन, एक बौद्ध, जो भी सिखाओ वह आदमी हो जाता है इसलिए जिसको हम धार्मिक आदमी कहते हैं वह अक्सर बुद्धिहीन पाया जाता है। उसमें बुद्धि होती ही नहीं क्योंकि जिसको हम धर्म कहते हैं वह बुद्धि होने के पहले पकड़ ली गयी है, बुद्धि आने पर भी वह जकड़े रहती है, वह पंजा पकड़ लेती है हमारे भीतर से। हिन्दू मुसलमान लड़ता हुआ देखा जाता है ईश्वर के नामपर लड़ता हुआ देखा जाता है, मंदिर मस्जिद के नाम पर लड़ता हुआ देखा जाता है। आश्चर्य की बात है।

ईश्वर भी बहुत प्रकार के हैं कि हिन्दू का ईश्वर अलग ढंग का है और मूर्ति तोड़ दी जाय तो हिन्दू के ईश्वर का अपमान हो जाता है और मुसलमान का ईश्वर और प्रकार है और अगर मस्जिद तोड़ दी जाय, आग लगा दी जाय तो उसके ईश्वर का अपमान हो जाता है! ईश्वर तो उसका नाम है जो है। मन्दिर में भी वह उतना ही है जितना मस्जिद में। बूचड़खाने में भी वह उतना ही है जितना मंदिर में और शराबखाने में भी उतना ही है जितना मस्जिद में है, चोर के भीतर वह उतना ही है जितना महात्मा के भीतर है। रत्ती भर कम नहीं है। हो भी नहीं सकता। आखिर चोर के भीतर कौन होगा, अगर परमात्मा नहीं होगा? वह राम के भीतर उतना ही है जितना रावण के भीतर। रत्ती भर कम नहीं हो सकता रावण के भीतर। वह हिन्दू के भीतर भी उतना ही है जितना मुसलमान के भीतर लेकिन वह जो हमारा गृह उद्योग है भगवान बनाने का उस गृह उद्योग को बड़ा धक्का लग जायगा अगर हम यह मान लें कि सभी के भीतर वही है। तो हमें अपना अपना ईश्वर थोपे चले जाना चाहिए। अगर एक फूल में हिन्दू भी ईश्वर देखे और मुसलमान भी, तो भी झगड़ा हो सकता है क्योंकि उस फूल में हिन्दू अपना ईश्वर ढालेगा, मुसलमान अपना। हिन्दू मुसलमान तो जरा दूर की बातें हैं, पास पास की दूकानों में भी झगड़े होते हैं। ये दूकानें तो जरा फासले पर हैं। काशी और मक्का में काफी फासला है लेकिन काशी में राम के, कृष्ण के मंदिर में उतना फासला नहीं है। वहां भी झगड़ा उतना ही है।

मैंने सुना है एक बड़े संत से, और बड़े संत सिर्फ इसलिए कहता हूं कि लोग कहते हैं, सिर्फ वह राम के भक्त थे, उनको कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया, उन्होंने हाथ जोड़ने से इंकार कर दिये। उन्होंने कहा, कृष्ण के मंदिर में मैं हाथ नहीं जोड़ सकता। मंदिर की मूर्ति के सामने खड़े होकर उन्होंने कहा कि अगर धनुष बाण अपने हाथ में लो तो मैं सिर झुका सकता हूं। यह बांसुरी लिए हुए हाथ जोड़ना मेरे वश के बाहर है। भगवान पर भी भक्त शर्त लगाता है इस पोजीशन में, वह ढंग से खड़ा हो जाय तो हम नमस्कार करेंगे। यानी नमस्कार करने के पहले तुम नाचो हमारे इशारे पर तब हम नमस्कार करेंगे। हमारा नमस्कार पीछे होगा, तुम नमस्कार करो हमको, धनुषबाण हाथ में लो या बांसुरी हाथ में लो। कैसे आसन में बैठो, कैसे ढंग से खड़े हो यह भक्त प्रेस्क्राइब

करता है भगवान के लिए। वह बताता है ऐसा ऐसा करो तब हम तुम्हें नमस्कार करेंगे। भक्त भी शर्त लगाता है। आश्चर्य की बात है, भगवान को भी मुझे निर्धारित करना है ? लेकिन अब तक जिसको हम भगवान कहते रहे हैं वह आदमियों के द्वारा निर्मित भगवान है और जब तक आदमियों के द्वारा निर्मित भगवान बीच में खड़ा है तब तक हम उसको न जान सकेंगे जो हमारे द्वारा निर्धारित नहीं। जिसके द्वारा हम निर्धारित हैं उसे हम कभी भी नहीं जान सकेंगे इसलिए आदमियों के भगवान से मुक्त होना है अगर उस भगवान को जानना हो जो कि है। लेकिन बड़ा कठिन है, अच्छे से अच्छे आदमी को भी कठिन है। जिसको हम अच्छा आदमी कहते हैं वह बड़ी मुश्किल से छूट पाता है, वह भी पकड़े रहता है, वह भी नहीं छोड़ता। वह भी बुनियादी नासमझियों को उतना ही जकड़कर पकड़ता है जितना नासमझ आदमी। नासमझ माफ किया जा सकता है लेकिन समझदार को माफ करना एकदम मुश्किल है।

अभी खान अब्दुल गफ्फार खां आये हैं। वे सारे मुल्क को समझाते फिरते हैं हिन्दू मुसलमान एकता की बात लेकिन वे पक्के मुसलमान हैं, उसमें रत्ती भर कमी नहीं है। उनके मस्जिद में नमाज पढ़ने में कोई सवाल नहीं उठता उनको। वे पक्के मुसलमान हैं और हिन्दू मुसलमान की एकता समझा रहे हैं। गांधी जी पक्के हिन्दू थे और हिन्दू मुस्लिम की एकता समझाते थे। जैसे गुरू थे वैसे उनके शिष्य हैं। वह पक्के हिन्दू हैं, उनके शिष्य पक्के हिन्दू हैं, उनके शिष्य पक्के मुसलमान हैं और जब तक दुनिया में पक्के हिन्दू और पक्के मुसलमान हैं तब तक एकता हो कैसे सकती है। इनको थोड़ा कच्चा करना जरूरी है तभी एकता हो सकती है। ये ही झगड़े की जड़ हैं। लेकिन ये झगड़े की जड़ें नहीं दिखायी पड़ती हैं। ये सब सिखा रहे हैं लोगों को कि सबको एक हो जाना चाहिए लेकिन ये नहीं जानते कि एक हो कैसे सकते हैं। जब तक भगवान अलग अलग हैं और जब तक मंदिर अलग अलग हैं और जब तक प्रार्थनायें अलग अलग हैं और सत्य के शास्त्र अलग अलग हैं और किसी का कुरान पिता है और किसी की गीता माता है तब तक ये उपद्रव बन्द नहीं हो सकते। लेकिन इसको तो हमने पकड़ लिया है। यह बिल्कुल सच्ची बातें हैं और हम कहते हैं कि कुरान की आयत पढ़ो और लोगों को समझाओ, एक हो जाओ। गीता के वचन पढ़ो और लोगों को समझाओ एक हो जाओ। लेकिन हमें पता नहीं है, गीता के वचन और कुरान की आयत झगड़े की जड़ें हैं किसी गाय की पूंछ कट जाय तो हिन्दू मुस्लिम दंगा हो जावेगा और हम कहेंगे कि गुंडों ने दंगा कर दिया। बड़े मजे की बात है कि गुंडे ने नहीं समझाया है कि गऊ जो है वह माता है। यह समझा रहे हैं महात्मा कि गाय माता है और तब झगड़े का आरोपण कर रहे हैं। किसी दिन पूंछ कट जायगी तो गऊ की पूंछ थोड़े ही कटती है, माता की पूंछ कट गयी। अब जब माता की पूंछ कट जायगी तो झगड़े शुरू होंगे और गुंडे फंस जायेंगे कि गुंडों ने झगड़ा करवा दिया। सब झगड़े की जड़ में जिनको हम महात्मा कहते हैं वे लोग हैं। अगर महात्मा झगड़ों की जड़ से हट जायें तो गुंडे तो बहुत निरीह हैं, कोई झगड़ा करने की उनकी सामर्थ्य नहीं है। महात्माओं का बल चाहिये पीछे, तब गुंडों में जान आती है नहीं तो गुंडों में जान नहीं रहती, लेकिन महात्मा दब जाते हैं क्योंकि हमें ख्याल ही नहीं है कि महात्मा झगड़े की जड़ में हैं। और झगड़े की जड़ है वह घर घर में पैदा किया गया परमात्मा। आप अपने घर के परमात्मा से बचने की कोशिश करना। आपके घर में आप परमात्मा नहीं ढाल सकते और ढाला हुआ निपट धोखा होगा। तो मैं नहीं कहता हूं कि आप परमात्मा का आरोपण करें। आप क्या करेंगे ? राम के नाम से करेंगे क्या आरोपण ? अगर कृष्ण का भक्त देखेगा तो सीधे कहेगा कि झाड़ की आड़ में बांसुरी बजाने वाले भगवान छिपे हैं और धनुर्धारी भगवान के लिए धनुर्धारी को देखेगा और कोई कुछ और कोई कुछ देखेगा। यह जो देखना है यह हमारी इच्छाएं हमारे ही विचार को थोपना है। ऐसा भगवान नहीं है। हमारे विचार, इच्छाओं को थोपने से उसका पता नहीं चल सकता है। हमें तो

मिटना ही पड़ेगा । अपने सब विचार, अपने सब आरोपण लेकर डूब ही जाना पड़ेगा, हमें तो खत्म ही होना पड़ेगा। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं । मेरे रहते भगवान का अनुभव बहुत असंभव है । मुझे विदा होना ही पड़ेगा तब ही उसका अनुभव हो सकता है। ये दोनों एक साथ नहीं होंगे । मैं, मैं रहते हुए भगवान के द्वार पर प्रवेश नहीं पा सकता ।

मैंने एक कहानी सुनी है । एक आदमी सब कुछ छोड़कर भगवान के द्वार पर पहुंच गया, धन छोड़कर, पत्नी छोड़कर, मकान छोड़कर, बच्चे छोड़कर भगवान के द्वार पर पहुंच गया है। लेकिन द्वारपाल ने हाथ से उसे रोक लिया और कहा कि अभी भीतर मत आ जाना। जाओ पहले छोड़कर आओ । उस आदमी ने कहा, मैं सब छोड़कर आ रहा हूं । द्वारपाल ने कहा, मैं तो कम से कम जरूरी था, ले आये । और सबसे हमें कोई मतलब नहीं है, हमें सिर्फ मैं से मतलब है । तुम कहते हो मैं सब छोड़कर आ रहा हूं हमें इस बात से कोई मतलब नहीं है, हमें तो मैं से मतलब है और वह आदमी कहता है कि मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। मेरी झोली बिल्कुल खाली है, न धन है, न पत्नी है, न बच्चे । कोई भी मेरे पास नहीं है । वह द्वारपाल कहता है, कम से कम तुम्हारी झोली में तुम तो हो उसे छोड़कर आओ । यह द्वार बन्द है उनके लिए जो मैं को लेकर आते हैं । वह द्वार सदा से बन्द है । लेकिन मैं को हम कैसे छोड़ दें । अगर हम छोड़ने की कोशिश करेंगे तो मैं कभी भी छूटने वाला नहीं है क्योंकि मैं कैसे छोड़ूंगा । मैं ही मैं को कैसे छोड़ूंगा । यह तो हो नहीं सकता । यह तो ऐसे ही है जैसे कोई अपने जूते के बंदों से अपने को उठाने को कोशिश करे तो मुश्किल में पड़ जायेगा । मैं, मैं को कैसे छोड़ूंगा सब छोड़ने के पीछे मैं फिर बच जाऊंगा । यह तो हो सकता है, कि एक आदमी कहने लगे, मैंने सब अहंकार छोड़ दिया । मेरे पास अहंकार ही नहीं । मगर इसके पास भी मैं है । अहंकार छोड़ने का भी अपना अहंकार है । तो क्या करे आदमी, बहुत मुश्किल की बात है । मुश्किल की बात नहीं है । मैं छोड़ने को नहीं कहता हूं । मैं आपसे कुछ भी करने को नहीं कहता हूं क्योंकि सब करने से मैं मजबूत होता है । मैं तो सिर्फ भीतर जाकर जानने को कहता हूं कि देखें, मैं क्या है । अगर होगा तो छोड़ने का उपाय नहीं है । और अगर नहीं है तब भी छोड़ने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि जो नहीं है उसको छोड़ेंगे कैसे । तो भीतर जायें और देखें, और खोजें वहां मैं है या नहीं और इतना मैं कहता हूं, जो भीतर जाकर खोजता है वह एकदम हंसने लगता है । वह कहता है मैं तो हूं ही नहीं तब कौन रह जाता है ? तब जो रह जाता है उसका नाम परमात्मा है और जो मेरे न होने पर रह जाता है क्या वह आपसे अलग होगा ? जब मैं ही न रहा तब अलग करने वाला कौन होगा ? मेरा मैं ही तो आपको मुझसे अलग करता है ।

यह घर की हमारी दीवाल है । घर की दीवाल आकाश को दो हिस्से में विभाजित करती है ऐसा दीवाल को भ्रम होता है । हालांकि आकाश दो हिस्से में विभाजित होता नहीं । आकाश अविभाजित है । चाहे कितनी ही सख्त दीवाल बन जाय लेकिन मकान के भीतर का आकाश और मकान के बाहर का आकाश दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है । कितनी ही बड़ी दीवाल उठाओ तो भी मकान के भीतर का आकाश और बाहर का आकाश दो नहीं हो जाते लेकिन मकान के भीतर रहने वाले आदमी को लगता है कि आकाश के हमने दो हिस्से कर दिये— एक मेरे घर के भीतर का आकाश, एक घर के बाहर का आकाश । लेकिन कल अगर दीवाल गिर जाय तो वह आदमी कैसे पता लगायेगा कि कौन मेरे घर के भीतर का आकाश है । तब तो आकाश ही रह जायेगा । ऐसे ही हमने चेतना की दीवालें उठाकर मैं को खण्ड खण्ड किया है और जब मैं की दीवाल गिर जायेगी तो फिर ऐसा नहीं है कि मुझे आपमें परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा । नहीं तब मुझे आप दिखाई नहीं पड़ेंगे और परमात्मा दिखायी पड़ने लगेगा । इसको ठीक से समझ लेना चाहिए इस बारीक फर्क को । ऐसा नहीं कि मैं आपमें परमात्मा देखने लगूंगा । यह गलत बात है । ऐसा कि आप नहीं दिखायी

पड़ेंगे और परमात्मा दिखाई पड़ेगा । ऐसा नहीं है कि वृक्ष में परमात्मा दिखायी पड़ेगा। नहीं, ऐसा कि वृक्ष नहीं दिखायी पड़ेगा और परमात्मा दिखायी पड़ने लगेगा। जब कोई कहता है कि कण कण में परमात्मा है तो बिलकुल गलत कहता है क्योंकि कण भी उसे दिखायी पड़ रहा है और परमात्मा भी उसे दिखायी पड़ रहा है। ये दोनों बातें एक साथ दिखायी नहीं पड़ सकतीं। सच बात यह है कि कण कण परमात्मा है यानी ऐसा नहीं कि कण कण में परमात्मा है और कोई परमात्मा अलग से उनके भीतर बैठा हुआ है, कण कोई बाहर से उसे घेरे हुए हैं ऐसा नहीं है। जो है वह परमात्मा है। जो है इसका ही प्रेम में दिया गया नाम परमात्मा है। जो है उसका नाम सत्य है। प्रेम में हम उसे परमात्मा कहते हैं । इसलिये मैं आपसे नहीं कहता हूं कि आप सबमें परमात्मा देखना शुरू करें। देखते ही आप मिट जायेंगे । आपके मिटते ही जो दिखायी पड़ेगा वह परमात्मा है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि यदि ध्यान से समाधि में जाया जा सकता है और समाधि से परमात्मा को जाना जा सकता है तो फिर आज के मंदिरों में जाना व्यर्थ है और उन्हें हटा देना चाहिए ?

मंदिरों में जाना तो व्यर्थ है, हटाने की कोशिश भी उतनी ही व्यर्थ है जिनमें भगवान है ही नहीं। जिनमें भगवान है ही नहीं उनको हटाने की झंझट में भी किसी को नहीं पड़ना चाहिए। वह बेचारे जहां हैं, उनके हटाने का क्या सवाल है ? और अक्सर यह दिक्कत होती है। जैसे मुहम्मद ने लोगों को कहा कि मूर्ति में परमात्मा नहीं है। तो मुसलमानों ने सोचा कि मूर्तियों को मिटा देना चाहिए और तब एक बड़े मजे का काम शुरू हुआ दुनिया में। एक तरफ मूर्तियों को बनाने वाले पागलों की जमात है और दूसरी तरफ मूर्तियों को मिटाने वाले पागलों कि जमात खड़ी हो गयी हैं। अब मूर्ति को बनाने वाला मूर्ति को बनाने में परेशान है और मूर्ति को मिटाने वाला दिन रात इस उधेड़ बुन में पड़ा है कि मूर्ति को कैसे मिटा दें। अब कोई पूछे कि मुहम्मद ने यह कब कहा था कि मूर्ति के तोड़ देने में भगवान है। मूर्ति में न होगा लेकिन मूर्ति के तोड़ देने में किसने कहा। और अगर मूर्ति के तोड़ देने में भगवान है तो फिर मूर्ति के होने में भी क्या कठिनाई है ? उसमें भी भगवान हो सकता है। अगर न होगा तो तोड़ने में कैसे हो जायगा। मैं नहीं कहता कि मंदिरों को हटा देना चाहिए। मैं यह कहता हूं कि इस सत्य को जानना चाहिए कि वह सब जगह है और जब हम इस सत्य को जानेंगे तो सब कुछ ही उसका मंदिर हो जायगा तब मंदिर और गैर मंदिर में अलग करना मुश्किल होगा। तब जहां हम खड़े होंगे वहां उसका मंदिर होगा, जहां आंख उठायेंगे, वहां उसका मंदिर होगा, जहां बैठेंगे वहां उसका मंदिर होगा। तब दुनिया में तीर्थ न रह जायेंगे क्योंकि पूरी दुनिया उसका तीर्थ होगी तब उसकी अलग अलग मूर्तियां खोजना व्यर्थ हो जायगा क्योंकि तब जो भी है, उसकी ही मूर्ति है। मैं जो कह रहा हूं, यह नहीं कह रहा हूं कि जाकर मंदिर मिटाने में लगें या हटाने में लगें या किसी को समझाने जायें कि मंदिर मत जाओ क्योंकि मैंने यह कभी नहीं कहा कि मंदिर में भगवान नहीं है। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि जो मंदिर में ही देखते हैं, उन्हें भगवान का कोई पता नहीं है। जिसे भगवान का पता होगा, उसे तो सब जगह भगवान होगा। मंदिर में भी, नहीं मंदिर है, वहां भी। तब वह फर्क कैसे करेगा कि कौन सा मंदिर है और कौन सा मंदिर नहीं है क्योंकि मंदिर हम उसे कहते हैं, जहां भगवान है और जब सब जगह भगवान है तो सभी जगह मंदिर है फिर अलग से मंदिर बनाने की जरूरत न रह जायगी और मंदिर तोड़ने की भी कोई जरूरत न रह जायगी। अक्सर यह भूल हो जाती है कि चीजों को समझने की जगह हम उल्टी चीज को समझने की कोशिश शुरू कर देते हैं बजाय इसके कि हम समझें कि मैं क्या कह रहा हूं। किसको बचाना है, किसको तोड़ना है, किसको मिटाना है। इसमें हम ज्यादा उत्सुक हो जाते हैं। क्या है, उसे समझने की कोशिश नहीं करते और यह निरन्तर भूलें होती रही हैं।

आदमी ने जो बुनियादी भूलें की हैं उनमें एक यह है कि जब भी उसे कुछ कहा जाता है तब वह तत्काल

न मालूम क्या सुन लेता है जो कहा ही नहीं गया था। अब मुझे कोई मंदिर का दुश्मन समझ सकता है लेकिन मुझसे ज्यादा मंदिर को प्रेम करने वाला आदमी पाना मुश्किल है। यह मैं क्यों कहता हूं। यह मैं इसलिए कहता हूं कि मैं तो सारी पृथ्वी को ही मंदिर देखा जा सके सब कुछ मंदिर हो सके उसकी फिकर में लगा हूं। लेकिन मेरी बात सुनकर कोई यह समझ सकता है कि जो छोटे-छोटे मंदिर बने हैं, उनको मिटा दो तो सब काम पूरा हो जायगा। उनको मिटा देने से काम पूरा नहीं हो जायगा सिर्फ जीवन में मंदिर बना लेने से काम पूरा होगा और वे दोनों आदमी गलत हैं जो मंदिर में ही भगवान को देख रहे हैं। वह यह गलती कर रहा है कि शेष में वह किसको देख रहा है। मंदिर से बाहर किसको देख रहा है? मंदिर उसका बड़ा छोटा है और भगवान बड़ा विराट है और इसलिए छोटे-छोटे मंदिर में समा नहीं सकता है और फिर दूसरा आदमी मंदिरों को तोड़ने में लग जाय कि मंदिरों को हटाओ, मंदिरों को मिटाओ तब भगवान को देख सकेंगे। इतने छोटे-छोटे मंदिर न तो भगवान का आवास बन सकते हैं और न भगवान को देखने में बाधा बन सकते हैं। ध्यान रखें उनका छोटा होना, इतना छोटा है कि न तो वह उसका घर बन सकते हैं और न उसका कारागृह बन सकते हैं कि उसको मिटाओ तो भगवान मुक्त हो जायगा। समझने की आवश्यकता है, मैं क्या कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि अगर हम ध्यान में प्रवेश करते हैं तो ही हम मंदिर में प्रवश करते हैं। क्योंकि ध्यान ही एक मंदिर है जिसकी कोई दीवाल नहीं है और ध्यान ही एक मंदिर है जहां प्रवेश पाते ही व्यक्ति मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है और ध्यान में जो जीने लगता है, वह चौबीस घंटे मंदिर में ही जीने लगता है और जो ध्यान में नहीं जीता है, वह मंदिर में भी जाकर क्या करेगा? जिसको हम मंदिर कहते हैं, वहां क्या करेगा, कोई ऐसा आसान तो नही है मामला कि दुकान पर बैठे बैठे आप एकदम मंदिर में चले जायें। हां, शरीर ले जाना बहुत आसान है। शरीर बेचारा बड़ा सरल है। उसको कहीं भी ले जायें। मन उतना सरल नहीं है। एक दुकानदार बैठा हुआ है दुकान कर रहा है और गिनती कर रहा है रुपयों की। चाहे तो उठकर फौरन शरीर को मंदिर में ले जा सकता है लेकिन शरीर मंदिर में चला जायगा और वह धोखा में पड़ेगा कि मैं मंदिर में आ गया लेकिन अपने मन में थोड़ा झांक कर देखेंगे तो बहुत हैरान हो जायेंगे कि मन अब भी दुकान पर बैठा हुआ है और रुपयों की गिनती कर रहा है।

मैंने सुना है, एक आदमी अपनी पत्नी से बहुत परेशान था। ऐसे तो सभी आदमी परेशान रहते हैं। वह बहुत परेशान था। धार्मिक आदमी था और पत्नी बड़ी अधार्मिक थी। यह बड़ा उल्टा मामला है। होता है अक्सर उल्टा। पत्नी धार्मिक होती है और पति अधार्मिक होते हैं लेकिन सब संभव है वह आदमी तो धार्मिक था, पत्नी अधार्मिक थी। मेरी समझ में ऐसा आता है कि दो में से एक ही धार्मिक हो सकता है। असल में दोनों एक बात हो ही नहीं सकते। एक कुछ हो जायगा और दूसरा उसके विपरीत हो जायगा। पति पहले धार्मिक हो जायगा तो पत्नी धार्मिक होने से बच गयी लेकिन पति रोज कोशिश करता है, पत्नी को धार्मिक बनाने की। धार्मिक आदमी में एक बात की बुनियादी खराबी होती है, वह दूसरे को भी अपने जैसा बनाने की। यह बड़ी खतरनाक बात है। यह हिंसा की बात है। किसी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा बड़ी बुरी है। किसी को हम अपने जैसा समझ लें, इतना काफी है लेकिन किसी को अपने जैसा बनाने की गर्दन पकड़ लें तो यह बड़ी तरकीब है। जिसको कहें कि आध्यात्मिक प्रकार की हिंसा है और सभी गुरू वैसा ही काम करते हैं इसलिए गुरुओं से ज्यादा हिंसात्मक आदमी खोजने मुश्किल हैं। किसी की गर्दन पकड़कर वे उसको धार्मिक बनाने की कोशिश करते हैं कि ऐसा कपड़ा पहनो, ऐसा बाल रखो, ऐसा सिर घुटाओ, यह करो, वह करो। यह खाओ, वह पीओ। ऐसे सोओ, ऐसे उठो। सब थोप कर उस आदमी को मार डालते हैं तो पति भी बड़ा उत्सुक था, असल में दूसरे को धार्मिक बनाने में मजा भी बहुत आता है। खुद तो धार्मिक बनना तो बहुत क्रांति की

बात है लेकिन दूसरों को धार्मिक बनाने में बड़ा संतोष मिलता है, क्योंकि दूसरों को धार्मिक बनाने में हम तो धार्मिक पहले से ही स्वीकृत हो जाते हैं। अब दूसरे को बनाने की बात रह जाती है लेकिन पत्नी थी कि सुनती ही न थी तो उसने अपने गुरू को कहा कि मेरी पत्नी को बदल दें। एक दिन उसके गुरू घर आये और उसकी पत्नी को समझाये। सुबह ही सुबह पांच बजे उसका गुरू उसकी पत्नी को समझाने उसके घर आया। पत्नी बुहारी लगाती थी घर के बाहर सीढ़ियां साफ कर रही थी। गुरू ने उसको वहीं रोका और कहा कि तुम्हारे पति कहते हैं कि तुम अधार्मिक हो, पूजा नहीं करती हो, प्रार्थना नहीं करती हो, घर में मंदिर बनाया पति ने उसमें जाती नहीं हो। सुबह पांच बजे हैं। पति मंदिर में बैठे हैं जाकर। पत्नी बाहर साफकर रही है। पत्नी ने कहा, मेरे पति भी कभी भी मंदिर में गये हों, ऐसा मुझे याद नहीं आता। पति मंदिर में था। आग भड़क गयी। धार्मिक आदमी को आग बहुत जल्दी भड़कती है और मंदिर में जो बैठा हो, उसकी आग भड़कना बहुत आसान है। पता नहीं वे आग छिपाने के लिए वहां बैठे रहते हैं या क्या करते हैं। धार्मिक आदमी इतना क्रोधी हो जाता है जिसका कोई हिसाब नहीं। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाय, सारे घर में उपद्रव हो जायगा। उसकी आग भड़क गयी। अपना मंत्र पूरा कर रहा था और जल्दी जल्दी पूरा किया। कहा कि यह क्या सरासर झूठ बोल रही हो, मैं मंदिर में हूं और मेरी पत्नी द्वार से बाहर मेरे गुरू से कह रही है कि वह कभी मंदिर गए हुए हैं, ऐसा मुझे मालूम नहीं। गुरू ने कहा, क्या कहती हो, वे तो निरन्तर मंदिर में जाते हैं तो पति ने और जोर जोर से राम राम की रट लगायी ताकि गुरू बाहर सुने। गुरू ने कहा देखो, वह इतनी जोर से राम राम की रट लगा रहा है। उसकी पत्नी ने कहा कि इस रट से आप भी धोखे में आते हैं। हद हो गयी, जहां तक मैं समझती हूं, रट तो वे लगा रहे हैं लेकिन मंदिर वे नहीं गये हैं। ये चमार की एक दुकान पर गए हुए हैं और जूता खरीद रहे हैं। पति की तो हद हो गयी। गुस्से की सीमा के बाहर हो गयी बात। मंत्र वंत्र छोड़कर बाहर दौड़ा हुआ आया और कहा कि क्या सरासर झूठ हो रहा है। मैं मंदिर में बैठा प्रार्थना कर रहा हूं। उसकी पत्नी ने कहा, थोड़ा और गौर से आप देखें। सच में आप प्रार्थना कर रहे थे ? जूते की दुकान पर जूता नहीं खरीद रहे थे ? झगड़ा नहीं हो गया था जूते वाले से। पति एकदम हैरान हुआ, बात यही थी। उसने कहा, तुम्हें कैसे मालूम ? पत्नी ने कहा, रात आप जब सोये तब मुझसे यही कहते सोये थे कि कल सुबह जाकर जूता खरीदना है और बड़ा महगा दाम बता रहे हैं बिना जूता के बहुत दिन से काम चला रहा हूं। कल सुबह जूता खरीदना है। उसकी पत्नी ने कहा, कि मेरा अनुभव यह है कि रात सोते समय जो आखिरी ख्याल होता है, सुबह उठते वक्त वह पहला ख्याल होता है। मैंने सिर्फ अंदाज से कहा है कि वह इस वक्त जूते की दुकान पर होना चाहिए। पति ने कहा, अब मैं कुछ कह नहीं सकता और बात यही सच है। मैं जोर जोर से राम राम जप रहा था लेकिन तब मैं जूते की दुकान पर था और जूता फिर महंगा बता रहा था तो मैंने उसकी गर्दन पकड़ ली थी झगड़ा हो गया था और इस झगड़े में और जोर जोर से राम राम कह रहा था। वह भीतर जो झगड़ा चल रहा था, यह ठीक ही कहती है, मैं मंदिर में कभी नहीं गया हूं, मंदिर जाना इतना आसान तो नहीं है कि आप एक दीवाल के भीतर चले गये और मंदिर में पहुंच गये। हो सकता है, मंदिर में शरीर पहुंच गया हो और मन ? मन का क्या भरोसा कि वह कहां हो और जिस दिन मन मंदिर में चला जाता है उस दिन शरीर की क्या फिकर। केवल मंदिर में गया है कि नहीं गया है क्योंकि जिस मन मंदिर में चला जाता है उस दिन तो आप अचानक पाते हैं कि उसका बड़ा मंदिर चारों तरफ से घेरे हुए है। इसके घेरे के बाहर जाना संभव कहां है ? कहां जाइएगा कि उसके मंदिर के बाहर चले जायेंगे। चांद पर चले जाओ, अभी चांद पर आर्मस्ट्रांग चला गया तो क्या उसके मंदिर के बाहर चला गया ? उसके मंदिर के बाहर जाने का उपाय कहां है ? क्योंकि उसके मंदिर के बाहर कोई जगह है कहां है जहां हम जा सकेंगे लेकिन जो लोग सोच

लेते हैं कि यह रहा उसका मंदिर। वे सोचते हैं कि इसके मंदिर के बाहर उसका मंदिर नहीं है, वह भी गलती में है और जो सोचते हैं कि इस मंदिर को मिटा देंगे क्योंकि इसमें नहीं है, वह भी उतनी ही गलती में हैं। उस मंदिर का बेचारे का क्या कसूर है? मंदिर बड़े सुन्दर भी हो सकते हैं अगर यह भ्रम हमारा मिट जाय कि वहीं भगवान है तो मंदिर बड़े सुन्दर हैं, बड़े प्रेमपूर्ण हो सकते हैं। बड़े आनन्दपूर्ण हो सकते हैं। असल में एक गांव बड़ा अधूरा लगता है, अगर उसमें एक मंदिर न दिखाई पड़ता हो। मंदिर का होना बड़ा आनंदपूर्ण हो सकता है लेकिन हिन्दू का मंदिर आनंद-पूर्ण नहीं हो सकता है, मुसलमान का मंदिर आनंदपूर्ण नहीं हो सकता है, ईसाई का मंदिर आनंदपूर्ण नहीं हो सकता है। परमात्मा का मंदिर आनंदपूर्ण हो सकता है। लेकिन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई की राजनीति इतनी गहरी है कि वह परमात्मा का मंदिर का प्रतीक भी नहीं बनने देती और इसलिए अब हिंदू का मंदिर और मुसलमान का मस्जिद तो बड़ी कुरूप मालूम पड़ती है। भला आदमी उनकी तरफ देखने में भी सकुचाता है। वहां बहुत दुष्टों का अड्डा बना हुआ है। वहां उपद्रव की मिस्चीफ ज्यादा सारी की सारी योजनाएं रखी जाती हैं और यह भी जरूरी नहीं है कि जो योजनाएं रचते हों, बहुत जानकर रचते हों क्योंकि मैं समझता हूं, उपद्रव की योजना कोई भी जानकर नहीं रचता है सिर्फ अज्ञान में ही रची जाती है तो वह सारी पृथ्वी को उन्होंने इस हालत में डाल दिया है। अगर पृथ्वी से कभी मन्दिर मिटेंगे तो नास्तिकों के कारण नहीं तथा-कथित आस्तिकों के कारण। करीब करीब मिट ही गये हैं, मिटे जा रहे हैं। पृथ्वी पर अगर मंदिर को बचाना है तो बड़े मदिर को पहले देखना जरूरी है फिर छोटे मंदिर उसमें अपने आप बच जाते हैं तब वह प्रतीक रह जाते हैं जैसे कि मैंने प्रेम में आपको एक रूमाल भेंट कर दिया। रूमाल चार आने का है लेकिन आप उसे संभाल कर तिजोरी में रखते हैं। मैं एक गांव में गया। स्टेशन पर मुझे लोग बिदा करने आये थे। किसी ने फूल माला मेरे गले में डाली। मैंने उसे उतार कर पास में एक लड़की खड़ी थी उसको दे दिया। ६ साल बाद गांव में गया तो उस लड़की ने मुझसे कहा कि आपकी फूलमाला को बड़ा सम्हालकर मैंने रखा है। फूलमाला तो सूख गयी। दूसरे को उसमें सुगन्ध नहीं आती लेकिन मुझे अब भी आती है। उसके घर में गया। उसने एक बड़ी सुन्दर पेटी में फूलमाला को सम्हालकर रखा हुआ है। न अब फूल बचे हैं, सूख गये हैं। न अब कोई सुगन्ध है और कोई भी देखकर कहेगा कि इस कचरे को इतनी खूबसूरत पेटी में क्यों रखा हुआ है? यह पेटी तो बहुत कीमती है, यह कचरा तो बिल्कुल बेकीमती है। लेकिन वह लड़की पेटी को फेंक सकती है उस कचरे को नहीं। उस कचरे में उसे कुछ और दिखायी पड़ता है। वह एक प्रतीक है। उस कचरे में किसी प्रेम की याददाश्त है। वह सारी दुनिया के लिए कचरा होगा उसके लिए कचरा नहीं है।

अगर मंदिर, मस्जिद और गिरजे किसी दिन प्रभु की तरफ उठती हुई आकांक्षाओं की सिर्फ याददाश्त रह जायें और सच बात तो यह है—देखे हैं गिरजे की उठती हुई मीनार, मस्जिद की उठती हुई मीनार, मंदिर का गुम्बद? आकाश में उठते हुए कलश? वह मनुष्य के भीतर जो ऊपर उठने की आकांक्षा है उस परमात्मा की तलाश के लिए जो यात्रा है उसके सिर्फ प्रतीक हैं, उससे ज्यादा कुछ भी नहीं कि मनुष्य सिर्फ मकान से राजी नहीं है, मनुष्य मंदिर भी बनाना चाहता है। मनुष्य सिर्फ पृथ्वी से राजी नहीं है आकाश की तरफ उठना भी चाहता है इसलिये मंदिरों में दिये जल रहे हैं। कभी सोचा है कि दिये किसलिए जल रहे हैं? घी के दिये जल रहे हैं, कभी सोचा है, घी के दिये किसलिए जल रहे हैं? कभी सोचा कि दिया भर एक चीज है जमीन पर जो नीचे की तरफ कभी नहीं जाता, सदा ऊपर की तरफ जाता है। नीचे की तरफ ले जा नहीं सकते दिये को। अगर दिये को उल्टा कर दें तो भी ज्योति ऊपर की तरफ भागती है। ज्योति नीचे की तरफ भगायी नहीं जा सकती। दिये निरन्तर ऊपर जा रहे हैं तो वह दिये की जो जलती हुई ज्योति है निरन्तर ऊपर भाग रही है।

वह प्रतीक है मनुष्य की आकांक्षा का । पृथ्वी पर हम रहते होंगे लेकिन आकाश को भी अपना घर बनाना चाहते है । बंधे हम होंगे जमीन से लेकिन खुले आकाश में मुक्त भी हो जाना चाहते हैं और देखा है कभी कि ज्योति कितनी शीघ्र उठ रही है और विलीन हो रही है । कभी यह देखा कि ज्योति उठी और विलीन हो गयी फिर खोजने से पता नहीं चलेगा कि कहां गयी वह भी प्रतीक है इस बात का कि जो ऊपर की तरफ जायेगा वह विलीन हो जायगा । दिया बहुत ठोस है और ज्योति बड़ी तरल है और जरा उठी नहीं है ऊपर कि खो गया है । जो ऊपर की तरफ उठेगा वह मिट जायेगा । वह उसकी भी प्रतीक है, वह उसकी भी खबर है । फिर आदमी अपने प्रेम के घी का दिया जला रहा है । कोई हर्जा नहीं कि मिट्टी का तेल क्यों जलायें । भगवान उनको मना करने नहीं आयेंगे लेकिन हमारे भाव यह हैं कि ऊपर की तरफ वही जा सकता है जो नीचे घी की तरह पवित्र हो । ऊपर की तरफ जाने की संभावना तभी है । ऐसे तो मिट्टी के तेल का दिया ज्यादा ऊपर को जायगा और मिट्टी के तेल में घी से कुछ कमी नहीं है लेकिन हमारे भाव के प्रतीक हैं और प्रतीक यह है कि घी की तरह पवित्र, ऊपर जा सकेगा, ऊपर की यात्रा हो सकेगी । मंदिर भी ऐसे ही प्रतीक हैं, मस्जिद भी ऐसे ही प्रतीक हैं, गिरजे भी ऐसे ही प्रतीक हैं । वे पवित्र प्यारे भी हो सकते थे । बहुत सौंदर्य के प्रतीक हैं । बड़े अद्भुत चित्र हैं । जो आदमी ने बनाये । लेकिन बड़े कुरूप हो गये हैं, क्योंकि उनके साथ बहुत बेहूदगियाँ जुट गयीं हैं । मंदिर मंदिर नहीं रहा, हिन्दू का मंदिर हो गया, हिन्दू का भी नहीं रहा । वैष्णव का हो गया । वैष्णव का भी नहीं रहा फलाने का हो गया । टूटते टूटते सारे मंदिर राजनीति के अड्डे हो गये हैं । जहां से संगठन सम्प्रदाय प्राण दबाते है और खतरे में ले जाते हैं । अब धीरे धीरे सब दूकानें हो गयी हैं । जहाँ शोषण चलता है और नेस्त स्वार्थ हैं । तो मैं आपसे यह नहीं कहता कि मंदिर मिटा देना मैं यह कहता हूं कि मंदिर से जुड़ा हुआ जो भी व्यर्थ है, उसको मिटा डालना है । नेस्त स्वार्थ मिटाना है, मंदिर को दुकान बनने से बचाना है । मंदिर को संगठनों और सम्प्रदायों से बचाना है । वह निपट परमात्मा की याद रह जाय, प्रतीक रह जाय । भागता हुआ आकाश की तरफ तो मंदिर बड़ा सुन्दर है और मैं आपसे यह कहता हूं कि जब तक मन्दिर राजनीति के अड्डे हैं, और राजनीति के अड्डे ही हैं, मन्दिर अब । जब कोई मन्दिर हिन्दू का है तो वह राजनीति का अड्डा हो गया क्योंकि राजनीति यानी संगठन । धर्म यानी संगठन से उसका कोई संबध नहीं । धर्म यानी साधना, राजनीति यानी संगठन । इतना ख्याल रखना, धर्म का साधना से तो संबंध हो सकता है । संगठना से कोई भी नहीं । राजनीति संगठन पर जीती है । संगठन प्रणय पर जीता है, घृणा खून पर जीता है और यह सब उपद्रव चलता रहता है । मंदिर को नहीं मिटा देना है, मंदिर का प्रतीक अपवित्र हो गया है । वह अपवित्रता उससे झाड़ देनी है । तब बड़े सौंदर्य का प्रतीक रह जायगा । अगर गाँव में एक मन्दिर रह जाय जो न हिन्दू का हो, न मुसलमान का, न ईसाई का तो वह गांव बड़ा सुन्दर हो जायगा । वह मंदिर उस गांव का आभूषण बन जायगा । वह गांव के बीच असीम की याद बन जायगा और तब उस मंदिर में जाने वाले ऐसा न समझेंगे कि मंदिर में जाने से हम भगवान के पास पहुंच गये और बाहर थे तो भगवान के पास नहीं थे । उस मंदिर में जाने वाला सिर्फ इतना ही समझेगा कि मंदिर एक जगह है जहां हम अपने भीतर उतरने के लिए सौंदर्य शून्य, शांति, एकांत उपलब्ध करने के लिए और कुछ भी नहीं । तब मंदिर भगवान के पास जाने का नहीं मंदिर ध्यान में जाने के लिए सिर्फ एक उपयुक्त स्थल रह जायगा और ध्यान परमात्मा में ले जाने का मार्ग बन जाता है । हर आदमी अपने घर को इतना शांत नहीं बना सकता, मुश्किल है, लेकिन कम से कम गांव मिलकर एक ऐसा घर बना सकते हैं जो शांत हो । हर आदमी अपने घर में एक शिक्षक लगाकर अपने बच्चे को नहीं पढ़ा सकता और अगर पढ़ाये भी तो स्कूल जैसा भवन नहीं दे सकता, बगीचा नहीं दे सकता, मैदान नहीं दे सकता । एक एक आदमी, एक एक स्कूल बनाये, अपने बच्चों के लिए तो बड़ी मुश्किल हो जायगी फिर थोड़े से

ही बच्चे दुनिया में शिक्षित हो सकेंगे। हम गांव में एक स्कूल बना लिये हैं जो घर में उपलब्ध नहीं है। हमने स्कूल में सब जुटा दिया है इतने मैदान नहीं हैं खेलने को, इतना सुन्दर स्वच्छ कमरे नहीं हैं बैठने को, इतने शिक्षक नहीं हैं समझाने को तो गांव का एक स्कूल है उसमें सारे बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं तो गांव के पास साधना का भी एक स्थल होना चाहिए। इतना ही मंदिर का अर्थ है मस्जिद का अर्थ है और कोई नहीं। लेकिन अब वह साधना के स्थल नहीं रह गये। अब वह उपद्रव के स्थल हो गये हैं जहाँ से झगड़े और आग फैलती हैं।

तो मंदिर को नहीं मिटा देना है। मंदिर उपद्रव न रह जाय इसकी जरूर फिक्र करनी है और मंदिर धर्म के साथ में आ जाय, और हिंदू, मुसलमान के साथ में रह जाय इसकी भी जरूर फिक्र करनी है और जिस धर्म के बच्चे इतनी ही सरलता से मस्जिद में जा सकते हैं, जितनी सरलता से मंदिर में उतनी ही सरलता से गिरिजे में जा सकते हैं जितना सरलता से किसी और शिवालय में। वह गांव धार्मिक गांव है। उस गांव के लोग भले हैं। उस गांव के मां बाप अपने बच्चों के दुश्मन नहीं हैं। अपने बच्चों को प्रेम करते हैं और उस गांव के मां-बाप एक बुनियाद रख रहे हैं कि उनके बच्चे कभी नहीं लड़ेंगे। उस गांव के मां-बाप कहते हैं, मस्जिद भी उसका घर है, मंदिर भी उसका घर है, जाओ जहां तुम्हें शांति मिले वहां बैठो, वहां उसे खोजो। घर तो सब कुछ उसका ही है लेकिन एक दफा उसकी झलक मिल जाय, उसके लिए भीतर जाओ, कहीं भी जाओ। उस दिन दुनियाँ में ठीक ठीक मंदिर बन सकेगा। अब तक वह नहीं बन सका है इसलिए मैं कोई मंदिर मिटाने वालों में से नहीं हूं। मैं तो यह कह रहा हूं कि मंदिर मिटा दिये गये हैं और जो मंदिर के रक्षक हो रहे हैं, वे ही मंदिर के लुटाने वाले हैं लेकिन कब हमें दिखायी पड़ेगा, कहना कठिन है और तब कई दफे उल्टा ख्याल हो जाता है। ऐसा ख्याल हो जाता है कि मैं कोई मंदिर के मिटाने वाले लोगों में से हूं। मुझे मंदिर को मिटाने से क्या प्रयोजन हो सकता है? हां, मंदिर के पास जो जो गैर मंदिर जैसा इकट्ठा हो गया है, वह विदा जरूर हो जाना चाहिए। उसकी चेष्टा में जरूर रत होना उचित है।

एक मित्र ने सुबह की चर्चा के बाद पूछा कि क्या कुछ आत्मायें शरीर छोड़ने के बाद भटकती रह जाती हैं?

कुछ आत्मायें निश्चित ही शरीर छोड़ने के बाद एकदम से दूसरा शरीर ग्रहण नहीं कर पाती हैं। इसका कारण है और उसका कारण शायद आपने कभी न सोचा होगा। दुनिया में अगर हम सारी आत्माओं को विभाजित करें, सारे व्यक्तित्वों को तो वे तीन तरह के मालूम पड़ेंगे। एक तो अत्यंत निकृष्ट, अत्यन्त हीन, चित्त के लोग, एक अत्यंत उच्च अत्यंत श्रेष्ठ, अत्यंत पवित्र किस्म के लोग और फिर बीच की एक जो दोनों का तालमेल हैं। बुरे और भले को मेल मिलाकर चलती हैं। जैसे कि अगर डमरू हम देखें तो डमरू दोनों तरफ चौड़ा है और बीच में पतला होता है। डमरू को उल्टाकर लें। दोनों तरफ पतला और बीच में चौड़ा हो जाय तो दुनिया की स्थिति समझ लेंगे। दोनों तरफ छोर और बीच में मोटा डमरू उल्टा। इन छोरों पर थोड़ी सी आत्मायें हैं। निकृष्टतम आत्माओं को भी मुश्किल हो जाती है नया शरीर खोजने में और श्रेष्ठ आत्माओं को भी मुश्किल हो जाती है नया शरीर खोजने में। बीच की आत्माओं को जरा भी देर नहीं लगती। यहाँ मरे नहीं, यहाँ नयी यात्रा शुरू हो गयी। इसके कारण हैं। उसका कारण यह है कि साधारण मतलब की जो आत्मायें हैं उनके योग्य गर्भ सदा उपलब्ध रहते हैं। मैं आपको कहना चाहता हूं कि जैसे ही आदमी मरता है, मरते ही उसके सामने सैकड़ों लोग सम्भोग करते हुए, सैकड़ों जोड़े दिखायी पड़ते हैं और जिस जोड़े के प्रति वह आकर्षित हो जाता है, वहां वह गर्भ में प्रवेश कर जाता है लेकिन बहुत श्रेष्ठ आदमी साधारण गर्भ में प्रवेश नहीं कर सकता। उनके लिए असाधारण गर्भ की जरूरत है। जहां असाधारण संभावनाएं व्यक्तित्व को मिल सकें। तो श्रेष्ठ आत्माओं को रुक जाना पड़ता है, निकृष्ट आत्माओं को

भी रुक जाना पड़ जाता है क्योंकि उनके योग्य भी गर्भ नहीं मिलता । उनके योग्य मतलब अत्यंत अयोग्य गर्भ मिलना चाहिए, वह भी साधारण नहीं । श्रेष्ठ और निकृष्ट, दोनों को रुक जाना पड़ता है । साधारण जन एकदम जन्म ले लेते हैं उसके लिये कोई कठिनाई नहीं है । उसके लिए निरंतर बाजार में गर्भ उपलब्ध है । वह तत्काल किसी गर्भ के प्रति आकर्षित हो जाता है ।

सुबह मैंने वार्दा की बात की थी । वार्दा की प्रक्रिया में मरते हुए आदमी से यह कहा जाता है कि अभी तुझे सैकड़ों जोड़े सम्भोग करते हुए दिखायी पड़ेंगे। तू जरा सोच के, जरा रुक के, जरा ठहर के, गर्भ में प्रवेश करना । थोड़ा ठहर के गर्भ में जाना । एकदम मत चले जाना । जैसे कोई आदमी बाजार में खरीदने गया है सामान, पहली दुकान पर ही प्रवेश कर जाता है । शो रूम में जो भी दिखायी पड़ जाता है वही आकर्षित कर लेता है फिर निर्णय करता है । ना–समझ जल्दी से पहले ही जो उसकी आंख में पड़ जाती है चीज वहीं चला जाता है । तो वार्दा की प्रक्रिया में मरते हुए आदमी से कहा जाता है कि सावधान ! जल्दी मत करना । खोजना, सोचना, विचारना क्योंकि सैकड़ों लोग निरन्तर संभोग में रहते हैं । सैकड़ों जोड़े उसे स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं और जो जोड़ा उसे आकर्षित कर लेता है और वही जोड़े उसे आकर्षित कर सकता है जो उसके योग्य धर्म देने के लिए क्षमतावान होता है । तो श्रेष्ठ निकृष्ट आत्माएं रुक जाती हैं । उनके लिए प्रतीक्षा करनी है कि जब उनके योग्य गर्भ मिले । निकृष्ट आत्माओं को उतना निकृष्ट गर्भ दिखायी नहीं पड़ता जहां वे अपनी संभावनाएं पूरी कर सकें । श्रेष्ठ आत्मा को भी नहीं दिखायी पड़ता । निकृष्ट आत्मायें जो रुक जाती हैं उनको हम प्रेत कहते हैं । श्रेष्ठ आत्मायें जो रुक जाती हैं, उनको हम देवता कहते हैं । देवता का अर्थ है, वे श्रेष्ठ आत्मायें जो रुक गयीं और प्रेत का अर्थ है वे आत्मायें जो निकृष्ट होने के कारण रुक गयीं । साधारण जन के लिए निरन्तर निरन्तर गर्भ उपलब्ध है । वह तत्काल मरा और प्रवेश कर जाता है । क्षण भर की भी देर नहीं लगती । यहां समाप्त नहीं हुआ, और वहां वह प्रवेश करने लगता है ।

उन्होंने यह भी पूछा है कि यह आत्मायें जो रुक जाती हैं क्या किसी के शरीर में प्रवेश करके परेशान करती हैं ?

इसकी संभावना भी है क्योंकि वे आत्मायें जिनको शरीर नहीं मिलता है, शरीर के बिना बहुत पीड़ित होने लगती हैं । निकृष्ट आत्मायें शरीर के बिना बहुत पीड़ित होने लगती हैं । श्रेष्ठ आत्मा शरीर को निरन्तर निरन्तर किसी न किसी रूप में बंधन अनुभव करती है और चाहती है कि इतनी हलकी रह जाय कि शरीर का बोझ भी न रह जाय । अंततः वह शरीर से भी मुक्त हो जाना चाहती है क्योंकि शरीर भी एक कारागृह मालूम पड़ता है । अंततः उसे ऐसा लगता है शरीर भी कुछ ऐसे काम करवा लेता है जो नहीं करने योग्य है इसलिए वह शरीर के लिए बहुत मोहग्रस्त नहीं होता । निकृष्ट आत्मा शरीर के बिना एक क्षण नहीं जी सकती । क्योंकि उसका सारा रस, सारा सुख, शरीर से ही बंधा होता है । शरीर के बिना कुछ आनंद लिये जा सकते हैं । जैसे समझें, एक विचारक है । तो विचारक का जो आनंद है वह शरीर के बिना भी उपलब्ध हो जाता है क्योंकि विचार का शरीर से कोई संबंध नहीं है । तो अगर एक विचारक की आत्मा भटक जाय शरीर न मिले तो उस आत्मा को शरीर लेने की कोई तीव्रता नहीं हो सकती क्योंकि विचार का आनन्द तब भी लिया जा सकता है लेकिन समझो कि भोजन करने में एक रस लेने वाला आदमी है तो शरीर के बिना भोजन करने का रस असंभव है तो उसके प्राण बड़े छटपटाने लगते हैं कि वह कैसे प्रवेश कर जाय और उसके योग्य गर्भ न मिलता हो तो वह किसी कमजोर आत्मा में, कमजोर से मतलब ऐसा आदमी जो अपने शरीर का मालिक नहीं है, उस शरीर में वह प्रवेश कर सकता है । किसी कमजोर आत्मा की भय की स्थिति

में। ध्यान रहे, भय का एक बहुत गहरा अर्थ है। भय का अर्थ है जो सिकोड़ दे। जब आप भयभीत होते हैं तब सिकुड़ जाते हैं जब आप प्रफुल्लित हो जाते हैं तो फैल जाते हैं। तब जब कोई आदमी भयभीत होता है तो उसकी आत्मा सिकुड़ जाती है और उसके शरीर में बहुत जगह छूट जाती है जहां कोई दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है। एक नहीं, बहुत आत्मायें भी एकदम से प्रवेश कर सकती हैं इसलिए भय की स्थिति में कोई आत्मा किसी शरीर में प्रवेश कर सकती है और करने का कुल कारण इतना होता है कि उसके जो रस हैं, वे शरीर से बंधे हैं। वह दूसरे के शरीर में प्रवेश करके लेने की कोशिश करते हैं। इसकी पूरी सम्भावना है, इसके पूरे तथ्य हैं, इसकी पूरी वास्तविकता है इसका यह मतलब हुआ कि एक तो भयभीत व्यक्ति हमेशा खतरे में है। जो भयभीत है, उसे खतरे हो सकते हैं। वह अपने मकान में, अपने घर के एक कमरे में रहता है बाकी कमरे उसके खाली पड़े रहते हैं और उसमें दूसरे लोग मेहमान बन सकते हैं। कभी कभी श्रेष्ठ आत्मायें भी शरीर में प्रवेश करती हैं लेकिन उनका प्रवेश बहुत दूसरे कारणों से होता है। कुछ कृत्य हैं, करुणा के जो शरीर के बिना नहीं किए जा सकते। जैसे समझें कि घर में आग लगी है और कोई उसको आग से बचाने में नहीं जा रहा है। भीड़ बाहर खड़ी है, किसी की हिम्मत नहीं होती कि आग में बढ़ जाय और तब अचानक एक आदमी बढ़ जाता है और वह आदमी बाद में बताता है कि मुझे समझ में नहीं आया, मैं किस ताकत के प्रभाव में बढ़ गया। मेरी तो हिम्मत नहीं थी वह बढ़ जाता है और आग बुझाने लगता है और आग बुझा लेता है। किसी को बचाकर बाहर निकल आता है। ऐसी किसी घड़ी में जहां कि किसी शुभ कार्य के लिए आदमी हिम्मत न जुटा पाता हो, कोई श्रेष्ठ आत्मा भी प्रवेश कर सकती है। लेकिन यह घटनायें कम होती हैं। निकृष्ट आत्मा निरन्तर शरीर के लिए आतुर रहती है। उसका सारा रस उनसे बंधे हैं और यह बात निरंतर ध्यान में रख लेनी चाहिए कि बाहर की आत्माओं के लिए कोई बंधा नहीं है। उनके लिए निरन्तर गर्भ उपलब्ध हैं। इसीलिए श्रेष्ठ आत्मायें कभी कभी सैकड़ों वर्षों के बाद ही पैदा हो पाती हैं और यह भी जानकर हैरानी होगी कि जब श्रेष्ठ आत्मायें पैदा होती हैं तो करीब करीब पूरी पृथ्वी पर श्रेष्ठ आत्मायें एक साथ पैदा हो जाती हैं जैसे कि बुद्ध और महावीर भारत में पैदा हुए आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले। बुद्ध, महावीर दोनों बिहार में पैदा हुए और उसी समय बिहार में ६ और अद्भुत विचारक थे। उनका नाम शेष नहीं रह सका क्योंकि उन्होंने कोई अनुयायी नहीं बनाये और कोई कारण नहीं था। वे बुद्ध और महाबीर की हैसियत के लोग थे लेकिन उन्होंने बड़े हिम्मत का प्रयोग किया। उन्होंने कोई अनुयायी नहीं बनाये। उनमें एक था प्रबुद्ध कात्यायन, एक आदमी था अजित केसकंबल, एक था संजय विलैठी पुत्र, एक था मखली गौसाल, और लोग थे। उस समय बिहार में ठीक आठ आदमी एक ही प्रतिभा के, एक ही क्षमता के पैदा हो गए और सिर्फ बिहार के एक छोटे इलाके में। ये आठों आदमी बहुत देर से प्रतीक्षा रत थे और मौका मिल गया एकदम से और अक्सर ऐसा होता है कि एक शृंखला होती है अच्छे की भी और बुरे की भी। उसी समय यूनान में सुकरात पैदा हुआ, थोड़े समय के बाद अरस्तू पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ। उसी समय चीन में कंफ्यूशयस पैदा हुआ, लाओत्से पैदा हुआ, मैंशियस पैदा हुआ, च्वातेसे पैदा हुआ। उसी समय सारी दुनिया के कोने कोने में कुछ अद्भुत लोग एकदम से पैदा हुए। सारी पृथ्वी कुछ अद्भुत लोगों से भर गई। ऐसा प्रतीत होता है कि सारे लोग प्रतीक्षा रत थे और एक मौका आया और गर्भ उपलब्ध हो गया और जब गर्भ उपलब्ध होने का मौका आता है तब बहुत से गर्भ एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं। जैसे कि फूल खिलता है एक। फूल का मौसम आया है, एक फूल खिला और आप पाते हैं कि दूसरा खिला और तीसरा खिला। फूल प्रतीक्षा कर रहे थे और खिल गये। सुबह हुई, सूरज निकलने की प्रतीक्षा हुई और फूल खिलने शुरू हुए। कलियाँ टूटीं, इधर फूल खिले, उधर फूल खिले। ठीक ऐसा ही निकृष्ट आत्माओं के लिए भी होता है। जब पृथ्वी पर उनके लिए योग्य

वातावरण मिलता है तो एक साथ एक शृंखला में वह पैदा हो जाती है। जैसे हमारे इस युग में भी हिटलर और स्टालिन और माओ जैसे लोग एकदम से पैदा हो गये। एकदम से ऐसे खतरनाक लोग पैदा हुए जिनको हजारों साल तक प्रतीक्षा करनी पड़ी होगी क्योंकि स्टालिन या हिटलर या माओ जैसे आदमियों को जल्दी पैदा नहीं किया जा सकता। अकेले स्टालिन ने रूस में कोई साठ लाख लोगों की हत्या की। और हिटलर ने अकेले एक आदमी ने कोई एक करोड़ लोगों की हत्या की। हिटलर ने हत्या के ऐसे साधन ईजाद किये वैसे पृथ्वी पर कभी किसी ने नहीं किये। हिटलर ने इतनी सामूहिक हत्या की जैसा कभी किसी आदमी ने नहीं की। तैमूरलंग और चंगेजखां ये सब बचकाने सिद्ध हो गए हिटलर ने गैस चैम्बर्स बनाये। उसने कहा. एक एक आदमी को मारना बहुत मंहगा है। एक एक आदमी को मारो तो गोली बहुत मंहगी पड़ती है। एक एक आदमी को मारना मंहगा, एक एक आदमी को कब्र में दफनाना मंहगा, एक एक आदमी की लाश को उठा कर बाहर फेंकना बहुत मंहगा है। तो कलेक्टिव मर्डर सामूहिक हत्या कैसे की जाय, लेकिन सामूहिक हत्या के करने के भी उपाय हैं। अभी अहमदाबाद में कर दिये या कहीं और कर दिये लेकिन ये बहुत मंहगे उपाय हैं। ऐसे एक एक को मारोगे तो काम ही नहीं चल सकता। इधर एक मारा उधर एक पैदा हो जाता है। हिटलर ने गैस चैम्बर बनाये। एक चैम्बर में पांच पांच हजार लोगों को एकदम खड़ा करके बिजली का बटन दबाकर एकदम से वाष्पीभूत किया जा सकता है। बस, पांच हजार लोग खड़े किया। बटन दबाया और गये। इसके बाद हाल खाली। वे गैस बन गये। इतनी तेज चारों तरफ से बिजली गई कि वे गैस हो गए। न उनकी कब्र बनाना पड़ी, न उनको कहीं मार कर खून गिराना पड़ा। खून गिराने का जुर्म हिटलर को कोई नहीं लगा सकता। अगर पुरानी किताबों से भगवान चलता होगा तो हिटलर को बिल्कुल निर्दोष पायेगा। उसने खून किसी का गिराया नहीं, छाती में छुरा मारा नहीं, उसने ऐसी तरकीब निकाली जिसका कोई वर्णन नहीं था। उस मुल्क ने नयी तरकीब निकाली जिसमें आदमी को खड़ा करो, बिजली की गर्मी तेज करो, एकदम वाष्पीभूत हो जायगा, एकदम हवा हो जायगा, बात खत्म हो गयी। उस आदमी का फिर नामोल्लेख खोजना मुश्किल है, हड्डी खोजना मुश्किल है, चमड़ी खोजना मुश्किल है। वे गये। पहली दफा हिटलर ने इस तरह आदमी उड़ाये। जैसे पानी को गर्म करके भाप बनाया जाय। पानी कहाँ गया, पता लगाना मुश्किल है। सब खो गया। ऐसे गैस चैम्बर बनाकर उसने एक करोड़ आदमियों को अन्दाजन उड़ा दिया।

ऐसे आदमी को जल्दी जन्म मिलना बहुत मुश्किल है और अच्छा है कि नहीं मिलता। बहुत कठिन हो जाता। अब हिटलर की बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। उसको दोबारा वापस लौटने के लिए बहुत कठिन मामला है क्योंकि इतना निकृष्ट गर्भ अब फिर से उपलब्ध हो, और गर्भ उपलब्ध होने का मतलब क्या है? गर्भ उपलब्ध होने का मतलब है उस माँ और पिता की लंबी शृंखला दुष्टता का पोषण कर रही है। एकाध जीवन में कोई आदमी इतनी दुष्टता पैदा नहीं कर सकता है कि उसका गर्भ हिटलर के योग्य हो जाय। एक आदमी कितनी दुष्टता करेगा? एक आदमी कितनी हत्यायें करेगा? हिटलर जैसा बेटा पैदा करने के लिए। हिटलर जैसा बेटा किसी को अपना माँ बाप चुने इसके लिए सैकड़ों हजारों लाखों की लंबी कठोरता की परंपरा ही कारगार हो सकती है यानी हजारों सैकड़ों वर्ष तक कोई आदमी बूचड़खाने में काम करते ही रहे तब नस्ल उसी योग्य हो पायेगी। उस योग्य हो पायेगा कि हिटलर जैसा बेटा उसको पसंद करे और उसमें प्रवेश करे। ठीक वैसा ही भली आत्मा के लिए भी है लेकिन सामान्य आत्मा के लिए कोई कठिनाई नहीं है। उसके लिए रोज गर्भ उपलब्ध हैं क्योंकि उसकी इतनी भीड़ है और उसके लिए चारों तरफ इतना गर्भ तैयार है और उसकी कोई विशेष मांगें नहीं है। उसकी मांगें बड़ी साधारण हैं। वही खाने की, पीने की, पैसा कमाने की, काम भोग की, इज्जत की, आदर की, पद भोग की, मिनिस्टर हो जाने की, इस

तरह की सामान्य इच्छाओं वाला गर्भ कहीं भी मिल जाता है क्योंकि इतनी सारी कामनायें सभी की हैं। हर माँ बाप ऐसे बेटे को चुनाव का अवसर दे सकता है। अगर किसी आदमी को ऐसी पवित्रता से जीना है कि उसके पैर का दबाव भी पृथ्वी पर न पड़े और किसी आदमी को इतने प्रेम से जीना है कि उसका प्रेम भी किसी को कष्ट न दे पाये, उसका प्रेम किसी के लिए बोझिल न हो जाय तो फिर ऐसी आत्माओं के लिए तो प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है।

●●●

सत्य : एक अंतर्दृष्टि

मैं अपने आपको जो भी समझ रहा हूं कि मैं हूं . वह क्या वस्तुतः मैं हूं, यह अपने से पूछना आवश्यक है। इस प्रश्न को हमारी गहराईयों में प्रतिध्वनित होना चाहिए। वह इतनी तीव्रता और सजगता से हमारे भीतर खड़ा हो कि भ्रम की कोई संभावना न रहे? इस प्रश्न, इस जिज्ञासा, इस अंतर्खोज के परिणाम में एक अभूत पूर्व जागरण और चेतना आती है, जैसे किसी ने हमें नींद से जगा दिया हो। और तब दिखाई पड़ता है कि हमने जो महल खड़े किये थे वह स्वप्न में थे और हमने जो नावें चलाई थीं वे झूठी थीं।

सारा जीवन ही तब असत्य दीखता है, जैसे वह अपना नहीं, किसी और का ही हो। वस्तुतः वह अपना है भी नहीं। वह कोई अभिनय है जो हम पूरा कर रहे हैं . ऐसा अभिनय जो हमारी शिक्षा, दीक्षा, संस्कार, परम्परा और समाज ने हमें सिखा दिया है, लेकिन जिनकी जड़ें हममें नहीं हैं।

यदि किसी गुलदस्ते में सजे फूल अनायास जाग जावें तो उन्हें जैसे ज्ञात हो कि उनकी कोई जड़ें नहीं हैं, ऐसा ही हमें भी जागने पर ज्ञात होना अवश्यसंभावी है। हम व्यक्ति नहीं, केवल धोखा हैं, जड़हीन, भूमिहीन अधर में लटके हुए किसी कथा के पात्र हैं ....किसी स्वप्न कथा के, जिनका वस्तुतः कोई होना नहीं है।

मैं इस स्वप्न में आपका डूबा और चलता हुआ देखता हूं। आपके सारे कार्य निद्रित हो रहे हैं। आपकी सारी क्रियायें सोई हुई हैं। पर सोने से जागना हो सकता है। निद्रा और मृत्यु में यही तो भेद है। एक से जाग सकते हैं, दूसरे से जाग नहीं सकते हैं।

निद्रा कितनी भी गहरी हो, तो भी जागरण उसकी संभावना है, वह उसमें प्रसुप्त बीज है।

मैं स्वयं के आमने सामने हो सकूं तो बहुत से भ्रम भंग हो जाते हैं....जैसे किसी ने अपने आपको बहुत सुन्दर मान रखा हो और वह पहली बार दर्पण के सामने आ जावे।

●●●

नारी और शांति

(जूनागढ़ महिला सभा में दिया गया एक प्रवचन)

संकलन : श्रीमती जयवंती, जूनागढ़

पिछले अंक में आपने आचार्य श्री के इस दृष्टिकोण को समझा कि नारी का अपना व्यक्तित्व होना चाहिए और उसके जीवन की दिशा पुरुष की ओर नहीं—अपनी ही ओर होना चाहिए। उसी क्रम में यह संकलन किश्त प्रस्तुत है :—

कभी पता होगा, अगर घर में पति से झगड़ा हो जाय तो उस दिन प्लेट ज्यादा टूट जाती है, जितनी कभी न टूटी थी। उस दिन कांच के ग्लास अचानक हाथ से छूट जाते हैं और जमीन पर छार छार हो जाते हैं अगर इसका आंकड़ा इकट्ठा किया जाय तो जिस दिन काँच टूटा हो, घर में प्लेट ज्यादा टूटी हों, उनका अगर हिसाब लगाया जाय तो वे, वे ही दिन होंगे, जिस दिन घर में कलह हुई है, संघर्ष हुआ है, उपद्रव हुआ है। हां; कभी कभी छूट भी जाते होंगे, वह दूसरी बात है। लेकिन अगर हिसाब रखा जाय तो पक्का पता चल जाता है कि जिस दिन मन क्रोध में है, उस दिन चीजें तोड़ने का मन होता है। क्रोध, दुख, चीजों को विध्वंस करना चाहता है। आनंद चीजों को निर्माण करना चाहता है। **स्त्रियां दुखी हैं, अशांत हैं, इसलिये सृजन नहीं कर पातीं।** क्या किया जा सकता है।

अंतिम इस बात पर विचार करें कि क्या किया जा सकता है।

पुरुष का हाथ है, स्त्रियों को उस दिशा में लाने में। लेकिन स्त्रियों की सहमति है। और जब कोई किसी को गुलाम बनाता है तो गुलाम बनाने वाला ही जिम्मेवार नहीं होता, बन जाने वाला भी उतना ही जिम्मेवार होता है। इस दुनिया में किसी की सहमति के बिना किसी को गुलाम नहीं बनाया जा सकता। [पुरुषों को समझना होगा कि स्त्रियों को व्यक्तित्व दे दें। प्रेम के नाम पर व्यक्ति की हत्या न करें। स्त्रियों को मुक्त करें। उन्हें अपने अपने अस्तित्व में खड़ा होने दें। वे किसी की पत्नियों की भांति न पहचानी जायें, अपने ही नाम से पहचानी जायें, सीधी और स्पष्ट।]

अभी परसों मुझसे कोई मिलने आया था। कोई फिल्म कथा लेखक थे। तो उनका जो परिचय हुआ तो उनका नाम बताया गया कि फलां फलां हैं। फिर उनकी पत्नी थीं उनका नाम बताया गया कि फलां फलां की पत्नी है। तो मैंने कहा कि तुम्हारा पत्नी होने के अतिरिक्त और कोई होना नहीं है। छोड़ो; तुम पत्नी होगी अपने पति के घर में, मुझे तुम्हारे पति से क्या मतलब मुझसे सीधे बात करो, तुम कौन हो? उसने कहा, न न न न मैं मिसिस फलाँ फलां। मैंने कहा कि वह तुम अपने पति से क्या संबंध है, मुझसे क्या लेना देना है। होओगी तुम किसी की श्रीमती लेकिन मुझसे क्या मतलब है, मुझसे सीधे बात करो। तुम्हारे पति नहीं कहते कि मैं श्रीमान फलां फलां, मैं फलां फलां का पति हूं। वह कभी भी नहीं कहते, वह कहते हैं कि मैं, मैं हूं और तुम पत्नी हो सदा! पत्नी होना तुम्हारे व्यक्तित्व का एक

हिस्सा है। मां होना तुम्हारे व्यक्तित्व का एक हिस्सा है। रसोई में खाना बनाना तुम्हारे व्यक्तित्व का एक हिस्सा है, तुम रसोइयन नहीं बन गयीं। और सफाई करती हो घर तो तुम बुहारी लगाने वाली नहीं हो गयीं। और बच्चे का पाखाना फेंकती हो तो तुम भंगिन नहीं हो गयीं। पति से तुम प्रेम करती हो तो पत्नी कैसे हो गयी? तुम्हारे काम हैं बहुत उनमें एक काम वह भी होगा, लेकिन फिर भी तुम तुम हो। तुम्हारा होना अलग से तुम्हारे कामों से प्रगट होना चाहिये।

पुरुष को मुक्ति देनी चाहिये कि स्त्री अपने पैरों पर खड़ी हो सके। लेकिन ध्यान रहे, अगर स्त्री ने यह प्रतिज्ञा की कि जब पुरुष हमें मुक्त करेगा तभी हम मुक्त होंगे तो यह मुक्ति भी एक गुलामी होगी क्योंकि जब दूसरा हमें मुक्त करेगा तभी हम मुक्त होंगे तो उस मुक्ति का कोई मतलब नहीं। स्त्रियों को मुक्त होने की दिशा में कदम उठाना चाहिये। उन्हें अपने व्यक्तित्व को अलग से निर्मित करने का विचार करना चाहिये। इतना नहीं है कि पत्नी होने से सब समाप्त हो गया। कवि भी होना चाहिये, संगीतज्ञ भी होना चाहिये, नृत्य-कार भी होना चाहिये, चित्रकार भी होना चाहिये। उनकी अपनी जिंदगी की अपनी दिशा होनी चाहिये। **पत्नी होना उनकी जिंदगी की सब कुछ पूर्णता नहीं है। पत्नी होना इति नहीं है, वह अंत नहीं है।** लेकिन पत्नी हो जाने के बाद 'दी अेन्ड आ जाता है।' एक दमसे इति आ जाती है। फिर उसके बाद फिर कुछ भी नहीं होता? **पत्नी होना होने की शुरुआत होना चाहिये।** लेकिन वह होने का अंत हो जाता है। उसके बाद फिर कुछ भी नहीं होना सब काम हो गया। जैसे किसी स्त्री ने पति खोज लिया, उसकी जिंदगी पूरी हो गयी। मौत आ गयी, खतम हुआ मामला, इसके बाद उसे कुछ भी नहीं करना है। जब तक पति खोजना था तब तक वह कुछ करती थी, लेकिन जब पति खोज लिया तो सब समाप्त हो गया। नहीं जिंदगी बहुत ज्यादा है। जिंदगी में और फूल खिल सकते हैं। जिंदगी में और संगीत आ सकते हैं। जिंदगी में बहुत रस हो सकता है, लेकिन पत्नी भर हो जाने से वह रस कभी भी नहीं होता। कुछ और भी करना पड़ेगा। **और जब वह रस होगा, जब पत्नी अपनी हैसियत से खड़ी होगी, सृजन करेगी, निर्माण करेगी, जिंदगी की दिशाओं में अपनी तरफ से खोज करेगी।** पुरुष ने रोका इसे उस खोज से क्योंकि पुरुष को डर है कि वह और खोज में जायेगी तो वह और पुरुषों के सम्पर्क में भी आ सकती है। वही डर आत्मघाती हो गया। उसे डर है कि अगर उसकी पत्नि पेन्टर बनेगी तो पुरुष उसकी पेंटिंग की क्लास में कहां उसके पीछे जाके खड़ा रहेगा। उसका मन है कि वह डंडा लेकर वहाँ भी खड़ा रहे। वह देखता रहे कि पत्नि किसी से बात तो नहीं करती, किसी से आनंदित होकर हंसती तो नहीं। इस डर में पत्नि को घर के भीतर बंद कर दिया। उसे संगीत सीखने जाने में डर हो गया, संगीतज्ञ के पास जाने में डर हो गया, चित्रकार के पास जाने में, लेकिन यह प्रेम बड़ा कमजोर है जो इतना भय-भीत है। ऐसा प्रेम दो कौड़ी का है। अगर मैं अपनी पत्नि को किसी दूसरे के पास अकेले में न छोड़ सकूं, बात न कर सके मेरी पत्नि, तो मेरा प्रेम बड़ा कमजोर है। बड़ा भयभीत है। है ही नहीं। ऐसे प्रेम को संभालने का मतलब भी क्या है? जो है ही नहीं। जिस प्रेम के लिए पुलिस वाला बन जाना पड़ता हो, उस प्रेम का कोई भी मतलब नहीं। वो है ही नहीं। प्रेम के लिए पुलिस वाले बनने का कोई सवाल ही नहीं। **प्रेम अपनी सुरक्षा है।** और अगर प्रेम अपनी सुरक्षा नहीं तो सब सुरक्षा यूँ ही है, बेईमानी है, दो कौड़ी का है, करने की कोई जरूरत ही नहीं। तो पुरुष इस डर की वजह से स्त्री को घर की चार दीवारी में बंद कर दिया है। पर्दा डाल दिया है। बुरखा ओढ़ दिया है। घूंघट करवा दिया है। सब तरफ से बंद कर दिया है। वह किसी के संपर्क में न आ जाये। यह कैसा प्रेम है। तो मुझे लगता है कि हम प्रेम को विकसित ही नहीं कर पाये। इसलिए इतना भय है। अन्यथा इतना भय न होता। बहुत डरे हुए लोग हैं। वे इतने भयभीत हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। उनका भय बताता है कि उन्होंने न प्रेम किया है, और न प्रेम पाया है। पत्नि भी भयभीत है कि उसका पति कहीं और स्त्रियों के संपर्क में न आ जाये। वह डरी

हुई है। वह रोज सांझ हिसाब किताब रखती है कि कहाँ थे, कहाँ नहीं थे, कहां गये थे, कहाँ से आ रहे हो? सारा पता रखती है। सारी जाँच पड़ताल रखती है। उसका पति किसी और स्त्री से जरा से सम्पर्क में आ जाय तो भय है। यह कैसा प्रेम है जो इतना कमजोर है! इतने कमजोर प्रेम का कोई मतलब नहीं। इतना कमजोर प्रेम है ही नहीं। प्रेम बड़ी शक्ति है। और पर्याप्त है। स्त्री को अपनी मुक्ति के लिए, अपने व्यक्तित्व को खड़ा करने की दिशा में सोचना चाहिए। प्रयोग करना चाहिए। लेकिन ज्यादा से ज्यादा वह क्लब बना लेती है। जहां ताश खेल लेती है, कपड़ों की बात कर लेती है, फिल्मों की बात कर लेती है, चाय, काफी पी लेती है, पिकनिक कर लेती है। और समझती है कि बहुत शिक्षित होना पूरा हो गया। ताश खेल लेती होगी, पुरुषों की नकल में दो पैसे जुआ के दांव पर लगा लेती होगी, इससे उसको व्यक्तित्व नहीं मिलने पाता। स्त्री को भी सृजन के मार्गों पर जाना पड़ेगा। उसे भी निर्माण की दिशायें खोजनी पड़ेंगी। जीवन को ज्यादा सुन्दर और सुखद बनाने के लिए उसे भी अनुदान करना पड़ेगा। तभी स्त्री का मान, स्त्री का सम्मान, उसकी प्रतिष्ठा, वह समकक्ष आ सकती है। और मेरी दृष्टि से देखने में स्त्री अगर आनंदित हो जाय तो हम जीवन को शांत करने के मार्ग पर बड़े कदम उठा सकते हैं। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूं, यह किसी को अतिशयोक्ति मालूम हो सकती है। लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि अगर दुनिया में युद्ध और हिंसा खतम करनी हो, तो जो बुनियादी इकाई है स्त्री और पुरुष की, उसको शान्त कर दें। अगर वह शांत, प्रेमपूर्ण आनंद बन जाय तो दुनिया में कोई लड़ने को राजी नहीं होगा। क्या आपको पता है? सैनिकों को अविवाहित रखना पड़ता है, ताकि लड़ सकें। **असल में जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, वे ही लड़ सकते हैं।** इसलिए सैनिकों को स्त्रियों से दूर रखना पड़ता है। कहीं उनके जीवन में प्रेम की किरण न आ जाये। अगर प्रेम आ जाय तो न वे मरना चाहते हैं, न किसी को मारना चाहते हैं। वे फिर जीना चाहते हैं। आज वियतनाम में, अमेरिका के सैनिक ज्यादा ताकत होने पर भी हारते चले जाते हैं। उसका कुल कारण इतना है कि अमेरिका का सैनिक स्त्री के निकट आ गया है। दुनिया का कहीं का सैनिक स्त्री के उतने निकट नहीं है। अमेरिकन सैनिक अपनी गर्ल्स फ्रेन्डस को लेकर वियतनाम के युद्ध पर पहुंच गये। उनकी दोस्त, उनकी पत्नियाँ, उनकी प्रेमिकायें तंबू में उनकी प्रतीक्षा कर रहीं हैं, अब एक सैनिक लड़ने गया, और उसकी प्रेयसी तंबू में उसकी प्रतीक्षा कर रही है, वह युद्ध पर लड़ सकेगा? वह दिन भर इस प्रतीक्षा में होगा कि किस भांति मैं वापिस लौट जाऊं और क्या वह किसी को मार सकेगा? जो आदमी किसी के प्रेम में है, वह किसी को भी मारने में असमर्थ हो जाता है। तो पिछले कोरिया के युद्ध में, कोरिया में जो अमेरीकी जनरल था, उसने रिपोर्ट दी है अमेरीकी सीनेट को, कि हमारे सौ सैनिक लड़ने जाते हैं, उसमें से चालीस प्रतिशत बन्दूकों का उपयोग नहीं करते। वह बन्दूकें लटकाये हुए घूम घाम के वापिस आ जाते हैं। और उसको कहा जाय कि तुम मारते क्यों नहीं। वह कहते हैं, जीवन इतना आनंद पूर्ण है, दूसरे के लिए भी तो इतना ही आनंदपूर्ण होगा। इसलिए पुरुषों को स्त्रियों से दूर रखना जरूरी है, अगर लड़ाना हो तो। वह भी जब उनका जीवन प्रेम पूर्ण नहीं होता तब वह तोड़ने को, मारने को उत्सुक हो जाता है। जब अपना ही जीवन इतना दुःखपूर्ण है तो किसी को भी खतम करो, कोई फर्क नहीं पड़ता। तोड़ो, मिटाओ, नष्ट करो। मेरी दृष्टि में इस पृथ्वी पर एक स्वर्ग बन सकता है। लेकिन प्रेम का स्वर्ग ही नहीं बन पाया। वह पहले इकाई पर ही सब गड़बड़ हो गया। मकान की नींव ही डगमगा गई। ऊपर के शिखर सब कंप रहे हैं। इस पर सोचें। जरूरी नहीं कि मेरी सभी बातें ठीक हों। कौन दावा कर सकता है सभी बातों के ठीक होने का? जैसा मैं सोचता हूं, वह मैंने कहा। उस पर सोचना। सोचने से हो सकता है कि कोई बात ठीक लगे। ठीक लगे तो ठीक लगते ही बात सक्रिय हो जाती है। न ठीक लगे बात समाप्त हो जाती है। मैं कोई उपदेशक नहीं हूं। मुझे जो ठीक लगता है वह कह देता हूं। निवेदन कर देता हूं। और मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●●●

भारत और आज की राजनीति

संकलन—(बड़ौदा जीवन जागृति केन्द्र)

आज की राजनीति पर कुछ भी कहने के पहले दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं— एक तो यह कि जो आज दिखायी पड़ता है वह आज का ही नहीं होता है, हजारों हजारों वर्षों के बीते हुए कल आज में सम्मिलित होते हैं, बीते सब कल जुड़े हैं और आज की स्थिति को समझना हो तो कल की उस पूरी शृंखला को समझे बिना नहीं समझा जा सकता है। मनुष्य को प्रत्येक आज की घड़ी पूरे अतीत से जुड़ी है, एक बात। और दूसरी बात, राजनीति कोई जीवन का ऐसा अलग हिस्सा नहीं है जो धर्म से भिन्नहो। हमने जीवन को तोड़ा है खण्डों में सिर्फ सुविधा के लिए, जो इटुका है। तो राजनीति अकेली राजनीति ही नहीं है, उसमें जीवन के सब पहलू और सब धाराएं जुड़ी हैं और जो आज का है वह सिर्फ आज का नहीं हैं, सारे कल उसमें समाविष्ट हैं। ये प्राथमिक रूप से ख्याल में हो तो मेरी बातें समझाने में सुविधा पड़ेगी। यह मैं क्यों बीते हुए कलों पर इसलिए जोर देना चाहता हूं कि भारत की आज की राजनीति में जो भी उलझाव हैं उसका बहुत गहरा संबंध हमारी अतीत की समस्त राजनीतिक दृष्टि से जुड़ा हुआ है। जैसे भारत का पूरा अतीत का इतिहास और भारत का पूरा चिन्तन राजनीति के प्रति विराग सिखाता है। अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है यह भारत की शिक्षा रही है। और जिस देश में यह ख्याल हो कि अच्छे आदमी को राजनीति में जाना नहीं है, अगर उसकी राजधानियों में सब बुरे आदमी इकट्ठे हो जायेंगे तो आश्चर्य नहीं। जब हम ऐसा मानते हों कि अच्छे आदमी का राजनीति में जाना बुरा है तो बुरे आदमी का राजनीति में जाना अच्छा हो जाता है। वह उसका दूसरा पहलू है।

हिन्दुस्तान की सारी राजनीति धीरे धीरे बुरे आदमी के हाथ में चली गयी है, चली जा रही है, चली जा रही है। आज जिनके बीच संघर्ष हैं वह अच्छे और बुरे आदमियों के बीच संघर्ष नहीं है, बुरे आदमी के अलग अलग ट्रेड मार्कों के बीच है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। इस संघर्ष में कोई भी जीते, उसमें हिन्दुस्तान का बहुत भला नहीं होने वाला है। कौन जीतता है, यह बिल्कुल गौण बात है, दिल्ली में कौन ताकत में आ जाता है यह बिल्कुल दो कौड़ी की बात है क्योंकि संघर्ष बुरे के गिरोहों के बीच है। हिन्दुस्तान का अच्छा आदमी राजनीति से दूर खड़े होने की पुरानी आदत से मजबूर है। वह दूर ही खड़ा हुआ है लेकिन इसके पीछे हमारे पूरे अतीत की धारणा है। हमारी मान्यता यह रही है कि अच्छे आदमी का राजनीति से संबंध नहीं होना चाहिए। बर्टेन्ड रसल ने एक छोटा सा लेख लिखा है, उस लेख का शीर्षक मुझे बहुत पसन्द पड़ा। हैडिंग दी है हार्म, दैट गुड मैन डू, नुकसान, जो अच्छा आदमी पहुंचाता है। अच्छा आदमी सबसे बड़ा नुकसान यह पहुंचाता है कि बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देता है। इससे बड़ा नुकसान अच्छा आदमी और कोई पहुंचा भी नहीं सकता। हिन्दुस्तान में सब अच्छे आदमी भगोड़े रहे हैं, एस्केपिस्ट रहे हैं। हिन्दुस्तान ने उनको ही आदर दिया है जो भाग जाय। हिन्दुस्तान उनको आदर नहीं देता है जो जीवन की सघनता में खड़े होकर संघर्ष करे। कोई भी

नहीं जानता अगर बुद्ध ने राज न छोड़ा होता तो दुनिया का ज्यादा हित होता या छोड़ देने से ज्यादा हित हुआ है। आज तय करना ही मुश्किल है। लेकिन एक परंपरा है हमारी कि अच्छा आदमी हट जाय। हम कभी यह नहीं सोचते कि अच्छा आदमी हटेगा तो जगह तो खाली नहीं रहेगी, वैक्यूम तो रहता नहीं। अच्छा हटता है, बुरा उसकी जगह भर देता है। बुरे आदमी भारत की राजनीति में अतीव संलग्नता से उत्सुक हैं। कुछ अच्छे आदमी भारत की आजादी के आंदोलन में उत्सुक हुए थे वे राजनीति में उत्सुक नहीं थे, वे आजादी में उत्सुक थे। आजादी आ गयी। कुछ अच्छे आदमी अलग हो गये, कुछ अच्छे आदमी समाप्त हो गये, कुछ अच्छे आदमी को अलग हो जाना पड़ा। कुछ अच्छे आदमियों ने सोचा कि अब बात खत्म हो गयी। खुद गांधी जैसे भले आदमी ने सोचा, कांग्रेस का काम पूरा हो गया है, अब कांग्रेस को विदा हो जाना चाहिए। अगर गांधी जी की बात मान ली गयी होती तो मुल्क इतने बड़े गड्ढे में पहुंचता जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। नहीं मानी गयी तो भी मुल्क गड्ढे में पहुंचा है लेकिन इतने बड़े गड्ढे में नहीं जितना मानकर पहुंचता। फिर भी गांधी जी के पीछे जो अच्छे लोगों की जमात थी, विनोबा और लोगों की, सब दूर हट गये। वह पुरानी भारतीय धारा फिर उनके मन को पकड़ गयी कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं होना चाहिए। खुद गांधी जी ने जीवन में बड़ी हिम्मत से. बड़ी कुशलता से भारत की आजादी का संघर्ष किया, उसे सफलता तक भी पहुंचाया लेकिन जैसे ही सत्ता हाथ में आयी, गांधी जी हट गये। वह भारत का पुराना अच्छा आदमी फिर मजबूत हो गया। गाँधी ने अपने हाथ में सत्ता नहीं ली, यह भारत के इतिहास का बड़ा से बड़ा दुर्भाग्य है जिसका नुकसान हमें हजारों साल तक भुगतना पड़ेगा। गांधी सत्ता आते ही हट गये। सत्ता दूसरे लोगों के हाथ में गयी। जिनके हाथ में सत्ता गयी वे गाँधी जैसे लोग नहीं थे। गाँधी से कुछ संभावना हो सकती थी कि भारत की राजनीति में अच्छा आदमी उत्सुक होता। गांधी के हट जाने से वह संभावना भी समाप्त हो गयी। फिर सत्ता के आते ही एक दौड़ शुरू हुई। बुरे आदमी की सबसे बड़ी दौड़ क्या है। बुरा आदमी चाहता क्या है? बुरे आदमी की गहरी से गहरी आकांक्षा अहंकार की तृप्ति है। बुरा आदमी चाहता है, उसका अहंकार तृप्त हो और क्यों बुरा आदमी चाहता है कि उसका अहंकार तृप्त हो? क्योंकि बुरे आदमी के पीछे एक हीनता की ग्रंथि काम करती रहती है। जितना आदमी बुरा होता है उतनी ही हीनता की ग्रंथि ज्यादा होती है और ध्यान रहे, हीनता की ग्रंथि जिसके भी भीतर हो वह पदों के प्रति बहुत लोलुप हो जाता है। सत्ता के प्रति, पावर के प्रति बहुत लोलुप हो जाता है। भीतर की हीनता को वह बाहर के पद से पूरा करना चाहता है। बुरे आदमी को, मैं, शराब पीता हो इसलिए बुरा नहीं कहता। शराब पीने वाले अच्छे लोग भी हो सकते हैं, शराब न पीने वाले बुरे लोग भी हो सकते हैं। बुरा आदमी इसलिए नहीं कहता कि उसने किसी को तलाक देकर दूसरी शादी कर ली हो। दस शादी करने वाला अच्छा आदमी हो सकता है, एक ही शादी पर टिका जन्मों से टिका रहने वाला आदमी भी बुरा हो सकता है। मैं बुरा आदमी उसको कहता हूं जिसकी मनोग्रंथि हीनता की है, जिसके भीतर इनफीरियरिटी का कोई गहरा भाव है। ऐसा आदमी खतरनाक है क्योंकि ऐसा आदमी पद को पकड़ेगा, जोर से पकड़ेगा, किसी भी कोशिश से पकड़ेगा और किसी भी कीमत और किसी भी साधन का उपयोग करेगा और किसी को भी हटा देने के लिए कोई भी साधन उसे सही मालूम पड़ेंगे। हिन्दुस्तान में अच्छा आदमी वही है जो न इन्फीरियरटी से पीड़ित है और न सुपीरियटी से पीड़ित है। अच्छे आदमी की मेरी परिभाषा है ऐसा आदमी जो खुद होने से तृप्त है, आनंदित है, जो किसी के आगे खड़े होने के लिए पागल नहीं और किसी के पीछे खड़े होने में जिसे कोई अड़चन, कोई तकलीफ नहीं। जो जहां खड़ा हो जाय वहीं आनंदित है। ऐसा अच्छा आदमी राजनीति में न जाय तो राजनीति सेवा न होकर शोषण बन जाती है। ऐसा अच्छा आदमी राजनीति में न जाय तो राजनीति केवल पावर, पोलिटिक्स, सत्ता और शक्ति

की अंधी दौड़ हो जाती है और शराब से कोई आदमी इतना बेहोश कभी नहीं हुआ जितना सत्ता से और पावर से बेहोश हो सकता है। और जब बेहोश लोग इकट्ठे हो जायें सब तरफ से तो सारे मुल्क की नैया डगमगा जाये, इसमें कोई हैरानी नहीं है। यह ऐसे ही है जैसे जहाज के सभी मल्लाह शराब पी लें और आपस में लड़ने लगें प्रधान होने को और जहाज उपेक्षित हो जाय और डूबे, या मरे या बचे इससे कोई संबंध न रह जाय। वैसी ही हालत भारत की है। राजधानी में भारत के सारे के सारे मदांध, जिन्हें सत्ता के सिवाय कुछ भी दिखायी नहीं पड़ रहा है वे सारे अंधे लोग, बेहोश लोग इकट्ठे हो गये हैं और उनकी जो शतरंज चल रही है उसमें पूरा मुल्क दांव पर लगा हुआ है। उस पूरे मुल्क से उनको कोई प्रयोजन नहीं है, कोई संबंध नहीं है। भाषण में वे बातें करते हैं, क्योंकि बातें करनी जरूरी हैं, प्रयोजन बताना पड़ता है लेकिन पीछे कोई प्रयोजन नहीं है। पीछे एक ही प्रयोजन है भारत के राजनीतिक के मन में कि मैं सत्ता में कैसे पहुंच जाऊं, मैं कैसे मालिक हो जाऊं, मैं कैसे नंबर एक हो जाऊं। यह दौड़ इतनी भारी है और यह दौड़ इतनी अंधी है। इस दौड़ के भारी और अंधे और खतरनाक होने का बुनियादी कारण यह है कि भारत की पूरी परम्परा अच्छे आदमी को राजनीति से दूर करती रही है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर भारत के लिए कभी भी एक स्वस्थ राजनीति को जन्म देना हो तो भारत की इस पुरानी धारणा को बिल्कुल मिट्टी में फेंक देना, आग में डाल देना, पानी में डुबा देना। यह धारणा नहीं मिटेगी तो भारत के लिए सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है। एक बात। दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि भारत का पूरा का पूरा अतीत नानडेमोक्रेटिक है, भारत का दिमाग लोकतांत्रिक नहीं है। भारत का दिमाग अत्याधिक अलोकतांत्रिक है। भारत की पूरी की पूरी परम्परा मनुष्य को समान स्वीकार नहीं करती है, नहीं तो शूद्र और ब्राह्मण असंभव हो जाते। भारत की पूरी धारणा आदमी आदमी के बीच वर्गों और वर्णों को स्वीकार करती है। एक आदमी जन्म से ही नीचा है और एक आदमी जन्म से ही ऊंचा है ऐसी हमारी मान्यता है। यह मान्यता बड़ी खतरनाक है। यह कुछ लोगों को पैदाइशी गुलाम बना देती है और कुछ लोगों को पैदाइशी मालिक होने का भ्रम दे देती है। लोकतंत्र की जो हम नयी रचना करने में लगे हैं उसके विपरीत है यह हमारी सारी धारणा। लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति को बराबर मूल्य देता है। जन्म से तय नहीं करता कौन बड़ा है कौन छोटा। धन से तय नहीं करता, कौन छोटा है, कौन बड़ा। पद से तय नहीं करता कौन छोटा है कौन बड़ा है। प्रत्येक व्यक्ति बराबर है, ऐसे लोकतंत्र की संरचना में हम लगे हों और हमारे पूरे माइंड की, हमारी पूरी की पूरी संस्कृति, हमारे मन की आधार शिलाएं एंटीडेमोक्रेटिक हों, लोकतंत्र विरोधी हों तो बड़ी अड़चन हो जायेगी। मन तो हमारे पास लोकतंत्र विरोधी है, लोकतंत्र का हम निर्माण कर रहे हैं तो लोकतंत्र की बातें करते हैं। भीतर लोकतंत्र हमारे मन में कहीं भी नहीं है इसलिए जो आदमी भी सत्ता पर बैठ जाता है वह पागल हो जाता है, तानाशाह होने की कोशिश में संलग्न हो जाता है। वही डिक्टोरियल हो जाने की कोशिश में संलग्न हो जाता है। गद्दी पर बैठते ही इस मुल्क में कोई आदमी लोकतांत्रिक नहीं रह जाता। लोकतांत्रिक आदमी ही नहीं है। जब तक ताकत नहीं है तब तक वह हाथ जोड़ कर आपके द्वार पर खड़ा होता है। जैसे ही ताकत आती है वह आपको पहचानना बन्द कर देता है। यह बड़ी अजीब बात है और अगर यह बात जारी रहती है तो भारत आज नहीं कल, किसी न किसी तरह की तानाशाही में फंस जाने को आबद्ध होगा।

आज जो दिल्ली में हो रहा है वह किसी आने वाली तानाशाही की सूचना है। वह आज नहीं कल, इस वर्ष नहीं अगले वर्ष हम उसी गड्ढे में गिरेंगे जहां दुनियां के सभी लोकतंत्रों के गिरने का डर होता है। हमारा डर सबसे ज्यादा है। हमारा डर ज्यादा इसलिए है कि हमने स्वीकार यह किया है कि राजा को हम मानते थे भगवान। जो देश राजा को भगवान मानता

रहा हो, अब भी उसके मन में वही भाव है। भाव कहीं खो नहीं गया है। और आदमी आदमी के बीच समानता की हमारी कोई दृष्टि नहीं है। बहुत खतरनाक बात है कि आज नहीं कल लोकतंत्र की हत्या हो जाय और शक्ति के पीछे अंधे लोग किसी भी क्षण हत्या कर सकते हैं। वे लोकतांत्रिक तभी तक हैं जब तक लोकतंत्र उन्हें सत्ता तक न पहुंचाये। सत्ता में पहुंचते ही उनका लोकतंत्र विदा हो जाता है। किसी ने कहा है और मुझे लगता है भारत में सही हो जायगा। किसी ने कहा है, लोकतंत्र तानाशाहों को चुनने की एक प्रक्रिया है। लोकतंत्र भी तानाशाहों को चुनने की एक प्रक्रिया है। तानाशाह भी आपकी मर्जी से चुने जायें, ऐसी प्रक्रिया। अगर लोकतंत्र का यही मतलब हो तो भारत में वह दिखायी पड़ता है और जो संघर्ष हमें दिखायी पड़ रहा है सब तरफ वह हमारे भीतर, मनों में जो उपद्रव, कांफ्लिक्ट है, मन है ऐंटीडेमोक्रेटिक और व्यक्तित्व हम देश का बनाना चाहते हैं लोकतांत्रिक। नहीं, ऐसे नहीं हो सकेगा। लोकतांत्रिक व्यक्तित्व तभी बन सकता है जब भीतर मन भी लोकतांत्रिक हो। भारत का पूरा मन बदला जाय तो भारत की राजनीति स्वस्थ, सुन्दर और सुखद हो सकती है और वह तब सत्ता का आग्रह और दौड़ नहीं रह जायगी।

भारत सदा से व्यक्ति पूजक रहा है और जो कौम भी व्यक्ति की पूजा करती है वह लोकतांत्रिक नहीं हो सकती। व्यक्ति की पूजा का मतलब ही यह है कि एक व्यक्ति महान है, और दूसरे लोग हीन हैं। एक व्यक्ति महात्मा है और दूसरे लोग हीन आत्मा हैं, एक भगवान है और दूसरे लोग साधारण हैं। व्यक्ति की पूजा करने वाली कोई कौम कभी लोकतांत्रिक नहीं हो सकती क्योंकि लोकतंत्र की घोषणा यही है कि कोई महान नहीं है, कोई छोटा नहीं है, सब समान हैं। समानता का यह भाव हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है। हम सदा से पैर छूते रहे हैं। हम सदा से किसी को बड़ा और किसी को छोटा मानते रहे हैं। यह छोटा और बड़ा मानने की हमारी अब तक की पूरी पूरी कल्पना और धारणा रही है। वैसी धारणा आज भी काम कर रही है। इसीलिए तो एक आदमी राजनीतिक पद पर खड़ा हो जाय तो एकदम भगवान हो जाता है। सारे अखबार उसकी खबरों से भर जाते हैं, सारी सुर्खियां उसको मिल जाती हैं। फिर मुल्क में कोई नहीं रहता, वही रह जाता है। पद से वह आदमी नीचे उतरा और बिल्कुल भूल जाता है और कोई पता नहीं चलता। राधाकृष्णन कहां खो गये, पता लगाना मुश्किल है, कहां रहते हैं यह भी पता लगाना मुश्किल है। एक आदमी सत्ता से नीचे उतरा कि फिर गया। वह हमारे लिए भगवान नहीं रह गया। सत्ता पर पहुंचा कि एकदम भगवान हो जाता है। यह जो हमारी स्थिति रही और हम व्यक्ति को इस भांति सत्ता पर बल देते रहे और पद को इतना मूल्य देते रहे तो फिर इस मुल्क में स्वस्थ वातावरण का निर्मित होना मुश्किल हो जायगा। मुझे लगता है कि हम शायद सर्वाधिक रूप से पद पीड़ित समाज हैं। पद सब कुछ है। पद से हीन व्यक्ति की कोई हमें चिन्ता और विचार नहीं। अगर ऐसा होगा तो सभी ऐम्बीसस और महत्वाकांक्षी लोग पदों की तरफ दौड़ने लगेंगे। आज कोई आदमी अच्छा शिक्षक नहीं होना चाहता। क्यों हो? शिक्षकों के दिवस पर मैं दिल्ली में बोलने गया था तो मैंने शिक्षकों से कहा कि मैं बहुत हैरान हूं। राधाकृष्णन शिक्षक थे और राष्ट्रपति हो गये इसलिए तुम शिक्षक दिवस मना रहे हो? मुझे कुछ समझ में नहीं आता। इससे क्या फर्क है? मैंने उनसे प्रार्थना की कि जब कोई राष्ट्रपति शिक्षक हो जाय तब तुम शिक्षक दिवस मनाना। अभी तो शिक्षक दिवस मनाने जैसा कुछ नहीं लगता है। एक शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाय तो यह शिक्षक का अपमान हुआ या सम्मान? एक राजनीतिज्ञ शिक्षक हो जाय और कहे कि दिल्ली छोड़ता हूं और जाकर बड़ौदा के पास एक गांव में शिक्षक हो जाऊंगा तो तुम शिक्षक दिवस मनाना। लेकिन शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाय तो शिक्षक दिवस शुरू हो जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि सब शिक्षक थोड़ा बहुत कोशिश करके कुछ न कुछ होने की दौड़ में लग जाते हैं। हिन्दुस्तान का एक भी

शिक्षक अब शिक्षा में उत्सुक नहीं है। कम से कम उप-शिक्षा मंत्री हो जाय, शिक्षा मंत्री हो जाय, इंस्पेक्टर हो जाय कम से कम। दौड़ जारी है। कोई शिक्षक शिक्षा में उत्सुक नहीं है क्योंकि शिक्षा का कोई सम्मान ही नहीं है। जर्मनी में कोई किसी शिक्षक को कहे कि चलो मंत्री बना देते हैं तो वह कहेगा कि पता नहीं, मैं प्रोफेसर हूं। वह इस तरह से कहेगा कि क्या मुझे अपदस्थ करना चाहते हो ? नीचे उतारना चाहते हो ? मैं एक प्रोफेसर हूं विश्वविद्यालय का। मंत्री होने का क्या सवाल है। जब ऐसा दिन इस मुल्क में होगा उस दिन राजनीति स्वस्थ हो सकेगी। तब यह सारा का सारा मुल्क एक ही महत्वाकांक्षा से भर जाय पद की तो एक बहुत ही उपद्रवपूर्ण कलह शुरू हो जायगी। हमें बहुत दिशाओं में सम्मान बांटना चाहिए। शिक्षक का अपना सम्मान है, संगीतज्ञ का अपना सम्मान है, चित्रकार का अपना है, संन्यासी का अपना है लेकिन सब विलीन हो गया है। किसी का सम्मान नहीं है। सिर्फ पद पर जो खड़ा हो उसका ही सम्मान है। आज अगर किसी संन्यासी को भी सम्मानित होना हो तो पहले किसी मिनिस्टर को खोजना पड़ता है। मिनिस्टर संन्यासी के पास आकर हाथ जोड़ कर बैठ जाय तो संन्यासी भी प्रतिष्ठित हो जाता है नहीं तो संन्यासी का भी अब प्रतिष्ठित होने का कोई उपाय नहीं है। अगर ऐसी स्थिति हमने बनायी तो स्वाभाविक होगा कि सभी एम्बीसस, सभी महत्वाकांक्षी लोग राजनीति की तरफ दौड़ें, सभी ओछे क्षुद्र मन के लोग राजनीति की तरफ दौड़ें तो वहां अगर एक अतर्कलह की और जहां बहुत लोग कलह करने लगें वहां के साधन अशुद्ध हो जायें तो आश्चर्य नहीं है। दिल्ली वैसा ही अड्डा बन गया। छोटे अड्डे अहमदाबाद है, भोपाल है, पटना है। छोटे अड्डे हैं और छोटे छोटे अड्डे हैं। फिर एक गांव छोटा अड्डा हो गया। सारा गांव, सारा देश सत्ता पाने की चेष्टा में इस भांति पागल है कि समझ के बाहर है कि यह मुल्क कुछ और भी सोचेगा, और भी विचारेगा ? कोई और दिशा नहीं है, कोई और क्रियेटिव सृजनात्मक और दिशा नहीं है। कोई दिशा नहीं मालूम पड़ती। सब अखबार उनके, सब रेडियो उनके लिए, सब सम्मान उनके लिए। तो फिर सभी आदमी पागल हो जायेंगे और जो आदमी जितना पागल होता है उतना ज्यादा पद का आकांक्षी होता है। पागल आदमी कहीं ऊंची जगह खड़ा होकर घोषणा करना चाहता है कि मैं कुछ हूं। अगर दुनिया कभी अच्छी हुई तो शायद हमें पता चले कि दुनिया के आधे पागल इसीलिए पागल होने से बच गये कि उन्हें राजनीति में जाने का मौका मिल गया। अगर हिटलर राजनीति में न जाय तो पागलखाने में हो। अगर माओ राजनीति में न जाय तो पागलखाने में होने के सिवाय और कोई जगह नहीं मिल सकती जहां वह हो। हमारे राजनीतिज्ञ इतने बड़े पागल नहीं। छोटे मोटे पागल खाने में इनकी भी जगह हो सकती है। बहुत बड़े पागलखाने में इनके लिए जगह नहीं हो सकती। लेकिन पागलपन पैदा हुआ है और एक मेडनेस है। यह भी अगर हम गौर करें तो हमारे अतीत की धारणाओं से ही निकलती है बात। हम पद के बड़े ही सम्मान करने वाले लोग रहे। सत्ता और शक्ति के, धन के और व्यक्ति पूजा के हम इतने दीवाने रहे हैं कि वह हमारा सब जारी है। अब भी वैसे का वैसा जारी है।

लोकतंत्र ऐसे निर्मित नहीं होता। यह धारणा हमें छोड़नी पड़ेगी। यह रुग्ण धारणा छोड़नी पड़ेगी कि व्यक्ति पूजा के योग्य है या व्यक्ति छोटा या बड़ा है। इंग्लैंड में चर्चिल की जरूरत थी। युद्ध आया चर्चिल की जरूरत थी, चर्चिल हुकूमत में आ गया। युद्ध गया, दुनिया सोच भी नहीं सकती थी कि चर्चिल ऐसे चुपचाप विदा कर दिया जायगा। हम कभी विदा नहीं करते क्योंकि हम सोचते हैं कि इतना बड़ा काम किया, फिर हम कैसे छोड़ सकते हैं। अब तो पूजा करो, मूर्तियां खड़ी करो, मालाएं पहनाओ, गुणगान करो। अब हम यह काम करते। चर्चिल को हम कभी नहीं छोड़ सकते थे। इंग्लैंड ने ऐसी सरलता से छोड़ दिया जैसे काम पूरा हो गया, बुलाया था, काम पूरा हो गया, आदमी गया।

व्यक्ति की पूजा नहीं है, व्यक्ति का उपयोग है। हम व्यक्ति की पूजा करते हैं, व्यक्ति का कोई उपयोग

नहीं है। एक आदमी एक दफे छाती पर बैठ जाय उसकी जरूरत भी पूरी हो जाय तो वह आदमी फिर बैठा ही रहे चला जाता है और कोई आदमी इस देश में रिटायर होना ही नहीं चाहता। वह तो जो लोग मर गये हैं अगर उनको फिर मौका मिल जाय तो कब्रों से वापस लौट आयें। यदि मरघटों में खबर कर दिया जाय कि राष्ट्रपति का चुनाव हो रहा है तो मुर्दे सब खड़े हो जायेंगे कोई आदमी सत्तर पचहत्तर साल का कितना ही हो जाय वह किसी पद से हटना नहीं चाहता। भारत की राजनीति में एक उपद्रव यह भी है कि वृद्ध-जन हटना नहीं चाहते। तो जो युवा हैं, जो उसमें जाना चाहते हैं, संघर्षरत हैं वह इस कलह का कारण बन गये। वृद्धों को हटने योग्य क्षमता आनी चाहिए। सच तो यह है कि वृद्धों को पता होना चाहिए कि बच्चों के खेल हैं कुछ। उम्र ज्यादा हो जाय, प्रौढ़ता बढ़ जाय तो दूसरे बच्चों को खेलने का मौका होना चाहिए। उन्हें हट आना चाहिए, कोई हटना नहीं चाहता जब तक उसे धक्का न दिया जाय और धक्का देने पर भी जब तक वह कुर्सी पकड़े रहे, आखिरी दम तक तो तब तक वह पकड़े रहेगा, छोड़ नहीं सकता। ऐसी बेहूदगी और अबसर्डिटी हो गयी है कि उस सब में बड़ा अजीब मालूम पड़ रहा है कि यह मुल्क कैसे आगे बढ़े। वृद्ध को हटने के योग्य क्षमता जुटानी चाहिए। जो काम कर सकते हैं, व्यक्तियों की पूजा नहीं, काम का सम्मान होना चाहिए और काम पूरा हो जाय तो व्यक्तियों को हट जाना चाहिए और इसमें हट आने की हिम्मत होनी चाहिए। अकृतज्ञता नहीं है, यह कोई ग्रेटीट्यूड की कमी नहीं है, सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि बीमार था आदमी, हमने डाक्टर को बुला लिया था। अब बीमारी खत्म हो गयी, अब डाक्टर को हम वहीं बिठाये हुए हैं। तो बड़ी मुश्किल हो जायगी। डाक्टर को अब बिदा कर देना चाहिए सम्मानपूर्वक।

हिन्दुस्तान आजाद हुआ। जिन लोगों ने स्वतंत्रता का संघर्ष किया, जरूरी नहीं है कि वे सत्ता करने में भी कुशल हों। यह बिल्कुल उल्टी बात है, इससे कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि जो लोग सेवा करने में कुशल हैं उनके हाथ में सत्ता देना बड़ा खतरनाक हो सकता है। जिन लोगों ने स्वतंत्रता के युद्ध में लड़ने में बड़ी क्षमता दिखलायी है, जरूरी नहीं है कि वे सत्ता करने में भी उतनी ही कुशलता दिखायें लेकिन वही हो गया। जेल जाना सर्टिफिकेट हो गया सत्ता करने का। जेल जाने वाले को हमें सम्मान देना चाहिए लेकिन सम्मान का मतलब यह नहीं कि वह सत्ता में बैठ जाय। तो कोई भी ऐरा गैरा आदमी जो किसी भी तरह जेल चला गया था या किसी तरह अब भी जेल का झूठा सर्टिफिकेट ला सकता हो तो वह सत्ता का हकदार हो गया। हमें व्यक्तियों की फिक्र है, कामों की जरा भी फिक्र नहीं है। इसलिए सारी की सारी राजनीति अजीब हालत में पड़ गयी। देश आजाद हुआ था। सोचा जाना चाहिए था, कौन लोग काम के साबित हो सकते हैं। नहीं, यह नहीं सोचा गया। किन लोगों ने आजादी की लड़ाई लड़ी, आजादी की लड़ाई लड़नी एक बात है, सत्ता करना बिल्कुल दूसरी बात है। तो ऐसी हालत हो गयी कि जो लोग अंगूठा से निशान लगाते हैं वे शिक्षा मंत्री होकर बैठ गये हैं। इसकी कोई फिक्र ही नहीं रही कि शिक्षा मंत्री होने का क्या मतलब हो सकता है। एक अव्यवस्था और अराजकता पैदा हुई और वह अब भी जारी है, उसमें अभी भी कोई फर्क नहीं हो सका है। व्यक्ति की पूजा हमें छोड़ देनी चाहिए। काम महत्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं और राष्ट्र महत्वपूर्ण है, समाज महत्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं। कौन हितकर है उसे हम पुकारेंगे। कौन हितकर नहीं है उसे हम विदा कर देंगे। विदा अपमान नहीं है। विदा केवल काम का पूरा हो जाना है लेकिन वह कोई भाव मुल्क में पैदा नहीं हो पा रहा।

तीसरी आखिरी बात आपसे कहना चाहता हूं जिससे उलझन भारी होती चली जाती है। भारत का जो मन है, वह जो हमारा नेशनल माइंड है, उस राष्ट्रीय चित्त में एक बहुत गहरी बात है और वह बात बिल्कुल

असामाजिक है, एंटी सोसल है। भारत के पांच छः हजार वर्षों के चिन्तन ने एक एक व्यक्ति को निपट स्वार्थी बना दिया है। हर व्यक्ति का अपना मोक्ष है, भारत में हर व्यक्ति का अपना सुख है। सामूहिक सुख, सामूहिक चित्त, सामूहिक आनन्द की कोई कल्पना ही नहीं है। हमने कभी सोचा ही नहीं इस तरफ। हम तो हरएक को समझाते हैं। पति को हम कहते हैं कि तू अपनी फिक्र कर। पत्नी अपनी फिक्र करे, बेटा अपनी फिक्र करे। कोई किसी के सुख में भागीदार नहीं है। हमने एक एक व्यक्ति को इस तरह तोड़ दिया है कि कम्युनिटी कहें, समाज कहें, वह भारत में पैदा ही नहीं हुआ। एक व्यक्ति अपनी फिक्र कर रहा है। अपना मोक्ष, अपना स्वर्ग खोज रहा है, अपने पाप पुण्य का हिसाब रख रहा है। दूसरे से क्या संबंध है? दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक अंतर्संबंध की भावना ही पैदा नहीं हुई इसलिए समुदाय कैसे सुखी हो, समाज कैसे सुखी हो, समाज कैसे बढ़े, आगे विकसित हो यह हमारे मन में नहीं है। एक एक व्यक्ति अपनी अपनी फिक्र में लग रहा है, एक एक व्यक्ति पहले मोक्ष की फिक्र करता था, अब एक एक व्यक्ति पद की, धन की, अपनी अपनी फिक्र कर रहा है इसलिए पूरा मुल्क एक बड़े अन्तर्कलह में है और युद्ध में पड़ा हुआ है। जहाँ सभी व्यक्तियों के व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत महत्वपूर्ण हों और समाज का कोई स्वार्थ न हो वहां यह हो जाना सुनिश्चित है। राजनीति में उसके सब फफोले और फोड़े और घाव फूटने शुरू हो गये हैं। वहां एक एक व्यक्ति अपने में उत्सुक है। वहां कोई व्यक्ति किसी दूसरे में उत्सुक नहीं है।

एक किताब मैं पढ़ रहा था। 'उन्नीस सौ पचहत्तर' किताब का नाम है। लेखकों ने घोषणा की है, तीन लेखक हैं, बड़े अर्थ शास्त्री हैं। उन्होंने घोषणा की है कि भारत में १९७५ और १९८० के बीच इतना बड़ा अकाल पड़ेगा कि उसमें दस करोड़ से बीस करोड़ लोग तक मर सकते हैं और मुझे लगता है कि उन्होंने जो दलीलें दी हैं वे सब सही हैं। उनमें कुछ कभी नहीं है। यह हो सकता है। दिल्ली में एक बहुत बड़े नेता से, नाम उनका नहीं लूंगा। नाम लेने से इस मुल्क में बड़ी मुश्किल होती है, झंझटें खड़ी हो जाती हैं। उनका नाम नहीं लूंगा। उनसे मैंने कहा, आपने यह किताब पढ़ी है? १९७८ में अर्थ-शास्त्री कहते हैं कि भारत में मनुष्य के इतिहास का सबसे बड़ा अकाल पड़ेगा। उन्होंने कहा, १९७८ अभी बहुत दूर है, अभी तो १९७२ का सवाल है। १९७८ से किसको मतलब है? न हम रहेंगे न सवाल है। जो रहेंगे वे जानेंगे। किसी को मतलब नहीं है पूरे देश से। प्रत्येक को अपने से मतलब है कि मैं कितनी देर तक पद में, सत्ता में संपत्ति में रह सकता हूं। इसके बाद बात खत्म हो जाती है। हमारा पूरा मुल्क व्यक्तियों की भीड़ है, समाज नहीं है। हम एक भीड़ हैं, समाज नहीं हैं। न तो हम राष्ट्र हैं, न हम समाज हैं, हम एक क्राउड हैं बड़ी इसलिए हम कभी भी गुलाम हो सकते हैं। गुलाम रहे हम एक हजार साल तक इसीलिए क्योंकि इस मुल्क में कोई समाज था ही नहीं। अगर एक आदमी को कोई कत्ल कर रहा था तो दूसरे लोगों ने सोचा हमें क्या मतलब है। अगर एक प्रान्त जीत लिया गया और एक राज्य हार गया तो दूसरे राज्यों ने सोचा कि हमें क्या मतलब है। लोग हारते चले गये। किसी को मतलब न था।

दुश्मन बहुत कम आये थे हिन्दुस्तान में। शायद बाबर हजार पांच सौ आदमियों को लेकर प्रविष्ट हुआ था। करोड़ों के मुल्क को जीतना कितना कठिन था लेकिन यहां एक मुल्क था ही नहीं तो पांच सौ आदमी एक आदमी के खिलाफ बहुत मजबूत पड़ गये। इतने छोटे से अंग्रेज इतने बड़े मुल्क पर इतने दिन हुकूमत कर सके उसका और कोई कारण नहीं था। यहां कोई समाज था ही नहीं। उनका एक समाज था। अगर तीन लाख अंग्रेज भारत में थे तो वे हमसे ज्यादा थे। हम चालीस करोड़ बेकार थे। उनका तीन लाख का एक समाज था, एक कम्युनिटी थी, यह चालीस करोड़ की एक भीड़ है। इस भीड़ में कोई अर्थ नहीं है। किसी को किसी से कोई प्रयोजन नहीं। अगर भारत को कहीं भी

इन जीवन की सारी गंदगियों को, राजनीति के सारे उपद्रवों को शांत करना हो और ठीक राजपथ पर भारत के भविष्य को ले जाना हो तो भारत की व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रवृत्ति को तोड़ना ही पड़ेगा। एक एक बच्चे को सिखाना पड़ेगा कि हमारा सुख जैसी कोई चीज नहीं होती है, तुम जैसा कुछ नहीं होता, हम जैसी कोई चीज होती है। सुख व्यक्ति का नहीं होता है, हम सबका सामूहिक अंतर संबंध है और दुख भी अंतर संबंध है। लेकिन हम भारत को समझा रहे हैं एक आदमी गरीब है तो हम कहते हैं कि अपने कर्मों का फल भोग रहा है। हम समाज से तोड़ दिये हैं उसको। हम यह नहीं कहते हैं कि अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। राष्ट्रों की कोई आत्मा, समाज की कोई अपनी आत्मा न हो तो जो हो रहा है वह होगा और विघटन होगा और डिसइंटीग्रेशन होगा। मद्रास कहेगा मैं अलग, बंगाल कहेगा मैं अलग, केरल कहेगा मैं अलग। और अभी तो ये प्रान्तों की बातें हैं। जिले पीछे नहीं रहेंगे। बड़ौदा कहेगा अहमदाबाद के साथ बंधे रहने की जरूरत क्या है। और अगर भारत की बुद्धि को पूरा खुलकर खेलने का मौका दिया जाय तो—मैंने सुना है कि बुद्ध के जमाने में भारत में दो हजार राज्य थे—अगर भारत की बुद्धि को पूरा मौका दिया जाय तो भारत की प्रतिभा को, जीनियस को, जिसको हम बड़ा आदर करते हैं, दो हजार राज्य फिर हो सकते हैं। कोई कठिनाई नहीं है। हमारी बुद्धि ही अजीब है। नर्मदा किसकी है ? मध्यप्रदेश की या गुजरात की ? झगड़ा चलेगा वर्षों तक। वहाँ प्यासा कोई मर जाय, खेत में पानी न पहुंचे, यह झगड़ा चलता रहेगा कि नर्मदा का पानी किसका है। कौन कितना ले, यह तय नहीं हो सकता। नर्मदा हिन्दुस्तान की नहीं है। यह तो मध्यप्रदेश की है या गुजरात की है। और एक जिला मैसूर में रहना चाहिए कि महाराष्ट्र में, इस पर गोलियां चलेंगी, दंगे फसाद होंगे। आश्चर्य है, आने वाले बच्चे सोचेंगे कि यह हमारे मां बाप पागल थे। क्या करें, इनके दिमाग में हो क्या गया था ? जिला गुजरात में होता है कि महाराष्ट्र में, फर्क क्या पड़ता है ? जिला हिन्दुस्तान का है, लेकिन हिन्दुस्तान न कोई जिला है न कोई नदी है, न कोई पहाड़ है। सब पहाड़, सब नदियां सब जिले किसी प्रदेश के हैं और चीजें आगे बढ़ती चली जायेंगी।

अभी मैं पटना में था बिहार में, वे कहते हैं हमारा झारखण्ड अलग होना चाहिए। मध्यप्रदेश में बुन्देलखण्ड के लोग कहते हैं बुन्देलखण्ड अलग होना चाहिए, तेलंगाना अलग होना चाहिए, विदर्भ अलग होना चाहिए। अगर हम पूरा मौका दें तो एक एक आदमी आखिरी जो नतीजा है एनालिसिस का कि मैं अलग, तुम अलग, मैं एक अलग राष्ट्र, तुम एक अलग राष्ट्र। इसने हमें तीन हजार वर्ष पीड़ित किया, वह फिर वैसा होना शुरू हो गया है, यह हैरानी की बात है कि हमने अंग्रेजों की गुलामी के बाद पहली दफा एक राष्ट्र की शक्ल ली है। हम इसके पहले कभी राष्ट्र नहीं थे। यह कितना दुखद है कि गुलाम कौम राष्ट्र नहीं थी। चर्चिल ने हिन्दुस्तान की आजादी के दिन १५ अगस्त को यह कहा था कि तुम फिक्र मत करो, उनको आजाद हो जाने दो। तुम पन्द्रह बीस साल में देखोगे तो उन्होंने गुलामी की सब व्यवस्था फिर पैदा कर ली। दो सौ साल का हमारा उन्हें अनुभव था और उसने कहा कि सब टूट जायेंगे, बिखर जायेंगे। वह आपस में लड़ जायेंगे, बिखर जायेंगे और हमने वह सारा बिखराव शुरू कर दिया है। लेकिन इन बिखरावों को हमने इमीजेट समझा, अभी का मामला है तो गलती हो जायगी। इसलिए मैंने कहा कि आज बिल्कुल आज नहीं है, हमारा बिल्कुल अतीत उसके पीछे खड़ा है। आज की राजनीति बिल्कुल आज की नहीं है, पूरा अतीत पीछे धक्के दे रहा है। उसे अगर हम समझेंगे तो कारण अलग कर सकते हैं और अगर हमने यह समझा कि पीछे का कोई सवाल नहीं है, यह सवाल बिल्कुल आज का है तो हम जो भी हल करेंगे वह हल दस प्रश्न खड़े करेगा और हल नहीं हो सकता।

पूरे भारत के चित्त को बदलना जरूरी है। तीन चार बातें मैंने कही हैं, उन्हें दोहरा दूं। पहली बात

अच्छा आदमी राजनीति के प्रति विराग छोड़ें और बुरे आदमियों को राजनीति में जाने से रोकने के सब उपाय होने चाहिए। लेकिन बुरे आदमी की अपनी तरकीबें हैं। वह कहता है कि सवाल अच्छे बुरे आदमी के चुनाव का थोड़े ही है, सवाल तो कम्युनिस्ट, कांग्रेसी और सोशलिस्ट का है। अच्छे और बुरे के बीच विकल्प ही नहीं छोड़ा है और फिर कहता है सोशलिस्ट को चुनो, कम्युनिष्ट को चुनो, कांग्रेस को चुनो। किसको चुनना है ? बुरे आदमी खड़े हैं। सवाल अच्छे और बुरे के बीच नहीं है, सवाल कम्युनिस्ट और कांग्रेसी, जनसंघी और कांग्रेसी के बीच है और दोनों मौसेरे भाई हैं। इसमें कोई फर्क नहीं है। अभी मुझसे किसी ने पूछा कि मोरार जी भाई को चाहेंगे आप कि इंदिरा को ? तो मैंने कहा, इन्दिरा बहन हैं, मोरारजी भाई हैं। भाई बहन में कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। झगड़े घरेलू हैं और भीतरी हैं और कोई आ जाय तो फर्क नहीं पड़ता है। भाई भी उतने साबित होंगे जितने बहन साबित होने वाली है। भाई बहन के झगड़े हैं। चुनाव का अर्थ ज्यादा नहीं है लेकिन हम चुनाव में पड़ जाते हैं—इसको चुनना है या इसको।

मैंने सुना है कि जापान में बैरे बहुत कुशल हैं। सारी दुनिया में आप जायें तो वे पूछेंगे कि आप भोजन के बाद चाय लेंगें कि नहीं लेंगे। जापान में ऐसा नहीं पूछेंगे। पूछेंगे, भोजन के बाद चाय लेंगे या काफी। विकल्प आपको देते ही नहीं। तो आदमी को सीधे ही सूझता है, क्या लें—चाय लें या काफी और अगर किसी ने पूछा कि भोजन के बाद चाय लेंगे कि नहीं लेंगे तो विकल्प दोनों है कि लेना है कि नहीं लेना है। पहले वाला ठीक पोलिटिकल नहीं है, राजनीतिज्ञ नहीं है। उसकी समझ क्या है। वह आदमी विकल्प दे रहा है, इन्कार करने का विकल्प भी दे रहा है। नहीं, विकल्प यह देना चाहिए कि चाय लोगे कि काफी ? तो कुछ आदमी यह सोचेंगे कि यह लें कि यह। उसे नहीं का ख्याल ही नहीं आता इमीजेटली।

हमारे सामने आदमी खड़ा होता है, एक लाल रंग की टोपी लगाये, एक सफेद रंग की टोपी। वे दोनों एक ही जैसे हैं। वे कहते हैं, किसको चुनते हो, सफेद टोपी को कि लाल टोपी को, और हमको ख्याल आता है कि इसको चुनें कि इसको। लेकिन यह ख्याल नहीं आता कि बुरे आदमी को चुनें कि अच्छे आदमी को। उसका विकल्प नहीं है। बुरा आदमी को हटाना जरूरी है सब तरफ से—चाहे वह कांग्रेसी हो, चाहे सोशलिस्ट हो, चाहे कम्युनिस्ट हो। यह सवाल नहीं है, हिन्दुस्तान के सामने सवाल यह है कि अच्छा आदमी कैसे जाये और एक नयी हवा पैदा करनी चाहिए कि अच्छे आदमी को चुनो। वह किस पार्टी का है यह दो कौड़ी की बात है। पार्टी का मूल्य उतनी बात नहीं है। अन्ततः अच्छा आदमी कैसे जाय यह सवाल है।

दूसरी बात मैंने आपसे कही कि यह जो इतने लंबे दिनों से हम जिस भाषा में सोचते रहे हैं, जो हमारे सोचने की केटेगिरीज हैं, धारणाएं हैं उन धारणाओं ने व्यक्ति को ज्यादा मूल्य दे दिया है। समाज का कोई मूल्य नहीं। समाज का मूल्य स्थापित करना जरूरी है। यह मैंने कहा कि हम व्यक्ति को आदर देते हैं, पूजा देते हैं, काम की कोई चिन्ता नहीं है, व्यक्तियों का कोई आदर और पूजा नहीं हो सकती, और हम गैर लोकतांत्रिक हैं। हमारी चिन्तना छोटे और बड़े की भाषा में सोचती है। अब तक हमारा लोकतांत्रिक मन नहीं हो सका और लोकतंत्र खड़ा करने चले हैं। यह मैंने कहा कि हीन भाव के लोग राजनीति में तीव्रता से दौड़ते हैं और हीन भाव का आदमी खतरनाक है क्योंकि एक तरह से रुग्ण है, बीमार है। उन आदमियों को भेजने की सोचना, तैयारी करने की जरूरत है जो न हीन हैं, न श्रेष्ठ हैं, जो जो हैं उसमें होने में आनंदित हैं, जो कहीं से भी हट सकते हैं, बिना कठिनाई के कहीं भी काम में लाये जा सकते हैं। व्यक्ति की पूजा बंद करनी जरूरी है और समाज का हित कैसे हो यह चिन्तन ज्यादा मूल्यवान है।

राष्ट्र नहीं है, समाज नहीं है हमारे पास। वह पैदा करना है। वह पैदा नहीं होगा हमारे पुराने ढांचे

में सोचने से और हम उस पुराने ढांचे के कारण जो भी सोचते हैं उससे राष्ट्र टूटता है। कहीं सोचते हैं भाषावार प्रान्त हो तो राष्ट्र टूटता है। अब हम सोचते हैं, एक राष्ट्रभाषा हो उससे भी राष्ट्र टूट रहा है। हम जो भी करते हैं उससे चीजें टूटती हैं, बिखरती हैं, बनती नहीं हैं। कोई जरूरत नहीं राष्ट्रभाषा की। जब राष्ट्र ही नहीं है तो राष्ट्रभाषा भी कैसे हो सकती है। राष्ट्र है ही नहीं, आप राष्ट्रभाषा के लिए चिल्ला रहे हैं। नहीं हो सकता। देश में पच्चीस राष्ट्रभाषा हैं, पच्चीस राष्ट्र-भाषाएं रहेंगी और अगर एक को लादने की कोशिश की तो ये पच्चीस टूट जाने वाली हैं। एक लादी नहीं जा सकती। अभी तो राष्ट्र को पैदा करो। इन पच्चीस को निकट लाओ। अगर राष्ट्र बनेगा तो राष्ट्रभाषा बन जायेगी। राष्ट्रभाषा राष्ट्र की छाया है, उसके पहले नहीं आती। राष्ट्र है ही नहीं तो राष्ट्रभाषा भी राष्ट्र को तोड़ने का कारण बनेगी। राष्ट्र तो बन नहीं सकता। मैं आपसे कहता हूं, राष्ट्रभाषा अभी पचास साल नहीं बन सकती क्योंकि राष्ट्र तो है नहीं। तो बेहतर है, मत उपद्रवों को खड़ा करो। जितनी भाषाएं हैं उनको स्वीकार कर लो। थोड़ी मेहनत होगी, अनुवाद से काम चलाओ, लेकिन राष्ट्रभाषा का सवाल छोड़ दो। जो भी तोड़ता हो वह सवाल छोड़ दो अभी, जो जोड़ता है वह सवाल इकट्ठे करो, जिससे हम जुड़ते हों, इकट्ठे हों और करीब आते हों वह सब हम करें और एक राष्ट्र और एक समाज बनें। एक लोकतांत्रिक चित्त पैदा हो और भले आदमी के लिए जो हमने दीवालें उठायी थीं वह हम अलग कर दें। तो शायद जैसा उलझाव हमें दिखायी पड़ता है वह बदल सकता है। मैं नहीं जानता, क्योंकि मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन दिखता जो है वह मैंने आपसे कहा। आपने शायद सोचा भी होगा कि आज की राजनीति पर मैं उन्हीं सब बातों पर बातें करूंगा जो रोज सुबह आप अखबार में पढ़ रहे हैं, तो आपने गलत सोचा होगा। उससे मुझे कोई मतलब नहीं। वह सिर्फ लक्षण हैं बीमारियों के, लक्षण हैं सिर्फ ऊपर के। भीतरी बीमारियां और हैं। लक्षणों के सोचने से कुछ हल नहीं होता। एक आदमी को बुखार चढ़ रहा है, एक आदमी हाथ को गरम देखकर समझे, गरम होना बीमारी है। ठण्डा पानी डालो, ठंडा करो इस आदमी को। हो जायेगा ठण्डा। नहीं बुखार नहीं है बीमारी। वह जो गर्मी मालूम हो रही है वह बीमारी नहीं है। बीमारी कहीं भीतर है। बुखार सिर्फ खबर दे रहा है कि आदमी भीतर कहीं रुग्ण हो गया है। उस भीतर के रोग को खोजें तो यह बुखार चला जायगा। बुखार सिर्फ सिम्बालिक है। तो यह जो हमें दिखायी पड़ रहा है सिर्फ बुखार है। इसको बीमारी मत समझ लेना, नहीं तो ठण्डा पानी डालने से और मुश्किल हो जायगी। इसके भीतर कहीं कारण छिपे हैं।

कुछ कारण मैंने सुझाये। आप सोचना। हो सकता है ठीक हों, हो सकता है गलत हों। कोई मेरी बात ठीक होनी चाहिए, ऐसा सवाल नहीं है। वह पुराने जो व्यक्तिवादी लोग थे उनका दावा था कि हम जो कहते हैं वह ठीक है। वह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं जो, उस पर सोचें। सोचने से ठीक निकलेगा, मेरे कहने से ठीक नहीं होता, न आपके कहने से ठीक होता है। हम सब एक डायलाग में जुड़ जायें, हम सोचें, विचारें। सोचें तो धीरे धीरे मंथन होगा और ठीक निकलेगा, ठीक निकल सकता है। आशा खोने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन दिल्ली की तरफ देखो तो बहुत निराशा होती है। दिल्ली की तरफ देखकर एकदम निराशा होती है। दिल्ली की तरफ देखें ही मत। यह बड़ा देश है, दिल्ली तो कुछ भी नहीं। एक बड़े देश की तरफ देखें। इसके एक एक आदमी को सोचने विचारने के लिए तैयार करें, हवा पैदा करें तो शायद एक दिन आ सकता है कि हमें इस तरह की बेवकूफियां जो चलती हैं रोज इससे छुटकारा हो जाय। छुटकारा न हुआ तो देश का बहुत नुकसान पीछे अतीत में जो हुआ है, आगे भी होगा। हम विकसित मुल्कों से कम से कम तीन सौ वर्ष पीछे हैं। अमरीका जहां है वहाँ से हम तीन सौ वर्ष पीछे हैं। हम ज्यादा हो सकते हैं। अगर हमें हमारे साधनों पर छोड़ दिया जाय तो हम तीन सौ साल बाद भी चांद पर नहीं पहुंच सकते। हम बहुत पीछे हैं और उनका

गति रोज बढ़ती चली जा रही है। एक आंकड़ा पढ़ रहा था मैं कि जीसस के मरने के बाद १८०० वर्ष तक मनुष्य का जितना विकास हुआ है उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ था और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना विकास हुआ था उतना पिछले पन्द्रह वर्षों में हुआ, अ.र पिछले पन्द्रह वर्षों में जितना विकास हुआ, आने वाले डेढ़ वर्षों में होगा। लेकिन हम कहां होंगे ? हम अपनी बैलगाड़ी लिए, अपना चर्खा चलाते रहेंगे। हमारी मर्जी, हमें कोई रोक नहीं सकता, धक्का दे नहीं सकता, लेकिन दुनिया आगे गयी है, आदमी बहुत आगे चला गया है। हम तो बहुत पीछे रह गये हैं। हमारे झगड़े बहुत टुच्चे और ओछे हैं। झगड़े भी बड़े हों तो भी सुख मालूम होता है, झगड़े भी बड़े हों तो मुल्क ऊपर उठता है। कोई बहुत बड़े झगड़े नहीं हैं।

●●●

आचार्य श्री के आगामी देश व्यापी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
२, ३, ४ एवं ५ अप्रेल ७०	अमरावती	सत्संग	श्री एस० एल० श्रीवास्तव, जीवन जागृति केन्द्र, खापर्डे बगीचा, अमरावती
१३, १४, १५, १६, १७ एवं १८ अप्रेल ७०	बंबई (क्रास मैदान)	सत्संग	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी० एन० रोड, बंबई : १ फोन : २६४५३०
१९ अप्रेल ७०	कलकत्ता	महावीर जयंती समारोह	श्री जुग मंदिर दास जैन, रूम नं० १६१, १५७, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१, फोन : ३४-१९६४
२५ एवं २६ अप्रेल ७०	जबलपुर (शहीद स्मारक भवन)	प्रवचन	श्री भीकम चंद, जीवन जागृति केन्द्र, ३८९, हनुमानताल, जबलपुर फोन : २९५७

सूचना : नारगोल साधना शिविर जो पूज्य आचार्य श्री के सान्निध्य में मई के प्रथम सप्ताह में आयोजित हो रहा था, उसमें कोई १५०० प्रेमी साधक भाग लेने के लिए उत्सुक थे। लेकिन वहां केवल ७५० साधकों के लिए ही स्थान होने से शिविर केन्सिल कर दिया गया है।

आचार्य श्री का प्रकाशित साहित्य

	हिन्दी	गुजराती	मराठी
१. साधना पथ	३।००	३।००	३।००
२. क्रांति बीज	३।००	२।५०	२।५०
३. सिंहनाद	१।५०	१।२५	३।००
४. मिट्टी के दिए	३।००	३।५०	—
५. पथ के प्रदीप	३।००	३।००	८।००
६. संभोग से समाधि की ओर	३।५०	३।५०	—
७. आचार्य रजनीश समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७।५०	—	—
८. मैं कौन हूं ?	२।००	२।००	—
९. नए संकेत	२।००	१।७५	—
१०. अज्ञात की ओर	२।००	२।००	—
११. सत्य की खोज	३।००	—	—
१२. अंतर्यात्रा	३।५०	—	—
१३. शांति की खोज	२।००	—	—
१४. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१।२५	१।५०	—
१५. सूर्य की ओर उड़ान	१।००	१।००	—
१६. प्रेम के पंख	०।७५	०।७५	०।७५
१७. कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१।००	०।७५	—
१८. अमृत कण	०।६०	०।५०	०।५०
१९. अहिंसा दर्शन	०।५०	०।५०	०।५०
२०. नई दिशा, नई बात	०।३०	—	—
२१. न आंखों ने देखा न कानों ने सुना	०।१५	—	—
२२. क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०।३०	—	—
२३. बिखरे फूल	०।३५	—	—
२४. जीवन और मृत्यु	—	१।००	—
२५. नए मनुष्य के जन्म की दिशा	०।७५	०।७५	—
२६. अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गांधी और मेरी चिंता)	५।००	—	—

प्राप्ति स्थल :

[१] जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड, बंबई : १

[२] मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।

[३] स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर।

[४] आर. अंबानी एंड कं०, अपोजिट : जिमखाना, राजकोट।

[५] चंद्रकांत पटैल, आमोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा, बड़ौदा।

[६] मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा वाराणसी।

[७] मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना।

[८] भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जलंधर शहर।

[९] नरसिंह भाई पटैल, सहकारी मुद्रणालय, कोठारी मार्ग, सुरेंद्रनगर।

[१०] सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

[११] बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद।

[१२] सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर—२

[१३] हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

[१४] सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

[१५] युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर।

[१६] श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–२

[१७] श्री महेन्द्र कुमार मानव, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर (म० प्र०)

[१८] श्री सौभाग्यचंद्र तुरखिया, २ प्रभात सोसाइटी, सुरेन्द्र नगर।

SYNTROFIX PIGMENT EMULSION PASTES

FOR

UNSURPASSED BRILLIANCY OF YOUR PRINTS

Available in variety of Shades :

SYNTROFIX BRILLIANT LEMON—YELLOW
GOLDEN—YELLOW
ORANGE
GREEN
BLUE
RED
BROWN
BLACK

Manufacturers :

SYNDET PRIVATE LIMITED

OFFICE : Prajapati Building, Khadia Char Rasta, AHMEDABAD No. 1
Tele. : 23682

FACTORY : Dudheshwar Road, Opp. Rustom Mills, AHMEDABAD No. 1
Tele :25732

"युक्रांद" आपके विज्ञापन का स्वागत करता है

विज्ञापन दरें

कव्हर अंतिम पृष्ठ	: २००)
कव्हर द्वितीय एवं तृतीय पृष्ठ	: १५०)
भीतर का पूरा पृष्ठ	: ७५)
भीतर का आधा पृष्ठ	: ४०)

आज ही अपना विज्ञापन निम्न पते पर भेजें :

अरविन्द कुमार, युक्रांद प्रकाशन
कमला नेहरू नगर, जबलपुर, (म० प्र०)

उत्तम तम्बाकू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

मोहनलाल हरगोविंददास

जबलपुर म० प्र०

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे ।

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, कमला नेहरू नगर, जबलपुर ।

मुद्रण : जबलपुर को-आपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, गोलबाजार, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित

वर्ष : १ ॥ अंक : १६ ॥ १ अप्रेल १६७० ॥ मूल्य : एक प्रति : ०.६० न० पै० ॥

॥ वार्षिक : १२ रु० ॥

आचार्य श्री के साहित्य की अलौकिक कृति : 'सत्य का सागर शून्य की नाव'

प्रकाशित होकर, अब सभी विक्रय केन्द्रों में उपलब्ध है।

मूल्य : तीन रुपया पचास पैसे।

प्रकाशक :

जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई । पूना । राजकोट । सुरेन्द्र नगर । भाव नगर । बड़ौदा । अहमदाबाद । जूनागढ़ । दिल्ली । जलंधर । लुधियाना । अमृतसर । पटना । द्वारका । जबलपुर । नागपुर । अमरावती । चंद्रपुर । गाडरवारा । इन्दौर ।